लेखक के दो शब्द

जैन पाठशाला के पठन क्रम में जो पुस्तकें अब तक प्रचलित रही हैं, उनमें या तो ऐसा पुस्तकें हैं जिनमें केवल धर्म शिक्षा के ही पाठ हैं या ऐसी पुस्तकें हैं जिनमें नीति के पाठ और कथा कहानियाँ ही हैं। भारत वर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् ने उक्त दोनों विषयों को एक ही कोर्स की तय्यारी के लिये मुझसे विशेष अनुरोध किया। परिषद् की आज्ञा पालन तथा शिक्षा प्रचार के भाव को हृदय मे रखकर मैंने यह कोर्स पाच पुस्तकों में तय्यार करने का प्रयास किया है। यह कार्य निज ख्याति या लाभादि के वशीभूत होकर नहीं किया गया।

जिन २ महानु भावों ने इन पुस्तकों के सम्बन्ध में अपना शुभ-सम्मति द्वारा सहायता दी है, उनके प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। तथा उन पत्रों, पुस्तक रचयिताओं तथा कवियों के भी हम अत्यन्त आभारी हैं कि जिनकी पुस्तकों में से कुछ गद्य और पद्य पाठ इसमें उद्धृत किये गये हैं। इस सकरण में परीक्षा बोर्ड के मन्त्री महोदय तथा अन्य शिक्षा प्रेमी विद्वानों के सुझाव पर कई संशोधन इन पुस्तकों में यथा योग्य स्थानों पर कर दिये गये हैं। हम समझते हैं कि वे छात्रों तथा अध्यापकों दोनों के लिये लाभदायक सिद्ध होगे।

उग्रसैन जैन M.A, L L.B

विषय-सूची

***



* ओरेम् *

श्रीवीतरागायन नमः

धर्म शिक्षावली

चौथा भाग



पाठ १

स्तुति

पं० दौलतराम जी कृत

दोहा

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रस लीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि रज रहस विहीन ॥ १ ॥

पद्धरि छन्द

जय वीतराग विज्ञान पूर
जय मोह तिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनन्तानन्त धार,
दृग सुख-वीरज मंडित अपार ॥२॥

जय परम शान्ति मुद्रा समेत,
भविजन को निज अनुभूति हेत।
भवि-भागन-वश जोगे वशाय,
तुम धुनि व्है सुनि विभ्रम नशाय ॥३॥
तुम गुण चिंतत निज पर विवेक,
प्रगटैं विघटैं आपद अनेक।
तुम जग भूषण दूषण वियुक्त,
सब महिमा युक्त विकल्प मुक्त ॥ ४ ॥
अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप,
परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन,
स्वाभाविक परणतिमय अछीन ॥५॥
अष्टादश दोष विमुक्त धीर,
स्व चतुष्टय मय राजत गम्भीर।
मुनि गणधरादि सेवत महन्त,
नव केवललब्धि रमा धरन्त ॥ ६
तुम शासन सेय अमेय जीव,
शिव गए जाहिं जैहैं सदीव।
भवसागर में दुख छार-वारि,
तारन को और न आप टारि ॥ ७

यह लखि निज दुख गद हरन काज,
तुम ही निमित्त कारण इलाज ।
जाने तातैं मैं शरण आय,
उचरों निजदुख जो चिर लहाय ॥८॥
मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप,
अपनाए विधिफल पुण्य पाप ।
निज को पर को करता पिछान,
पर में अनिष्टता इष्ट ठान ॥९॥
आकुलित भयो अज्ञान धारि,
ज्यों मृग मृग-तृष्णा जान वारि ।
तन परणित में आपो चितार,
कबहूं न अनुभवो स्वपदसार ॥१०॥
तुमको निन जाने जो कलेश,
पाए सो तुम जानत जिनेश ।
पशु नारक नर सुरगति मझार,
भव धर २ मरयो अनन्त बार ॥११॥
अब काल लब्धि बलतैं दयाल,
तुम दर्शन पाय भयो खुशाल ।
मन शान्त भयो मिट सकल द्वन्द,
चाख्यो स्वातम रस दुख निकन्द ॥१२॥

तातैं अब ऐसी करहु नाथ,
बिछुरै न कभी तुम चरण साथ।
तुम गुण गण को नहिं छेव देव,
जगतारण को तुव विरद एव ॥१३॥

आतम के अहित विषय कषाय,
इनमें मेरी परणति न जाय।
मैं रहौं आप में आप लीन,
सो करो होहुं ज्यों निजाधीन॥१४॥
मेरे न चाह कछु और ईश,
रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारण सु आप,
शिव करहु हरहु मम मोह ताप॥१५॥
शशि शान्ति करन तप हरन हेत,
स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय,
त्यों तुम अनुभव तैं भव नशाय॥१६॥
त्रिभुवन तिहु काल मझार कोय,
नहिं तुमबिन निजसुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज,
दुख जलधि उतारन तुम जहाज॥१७॥

दो०—तुम गुण-गणमणि गणपती, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्प मति किमि कहै, नमौं त्रियोग सभार ॥१८॥

प्रश्नावली

१—यह स्तुति किसकी बनाई हुई है ?
२—स्तुति से तुम क्या समझते हो ? इस स्तुति को कब और क्यों पढ़ते हो ?
३—नीचे लिखे छन्द सुनाओ —
(क) "भ्रम्यो अरत पो" से लेकर "भर्यो अनन्त बार"
(ख) आतमा के अहित　　　　अक तक।
(ग) आदि के चार छन्द पढ कर सुनाओ।

पाठ २

धीर वीर चन्द्रगुप्त

बौद्धों के ग्रन्थ महावंश से प्रगट है कि मगध देश में रहने वाले शाक्य घराने के कुछ राजा अन्य राजाओं के आक्रमण से पीड़ित होकर हिमालय पर्वत पर जा बसे। वहाँ एक नगर मयूर की गर्दन के समान रच कर उसका नाम 'मयूर नगर रखा। वहाँ के रहने वाले मौर्य कहलाने लगे।

इन्हीं मौर्य राजकुमारों में एक चन्द्रगुप्त नाम का राजकुमार भी था। उसकी माता मोर्याख्य देश के क्षत्रियों

की राजकुमारी थी। राजा दुष्ट था, इसलिए चन्द्रगुप्त की माता पटना चली गई। यहाँ उसने वीर पुत्र को जन्म दिया और उसका पालन पोषण किया। राजकुमार चन्द्रगुप्त बड़े पराक्रमी और बुद्धिमान थे। वह शास्त्र और शस्त्र विद्या में निपुण हो गये। चाणक्य नाम के एक ब्राह्मण ने चन्द्रगुप्त को पढ़ाकर प्रवीण किया।

उस समय मगध में महा पद्मनन्द का राज्य था। जिससे चाणक्य को सन्तोष न था। वह राजा को हटा कर चन्द्रगुप्त को राजगद्दी पर बिठाना चाहता था। उन दिनों भारत पर यूनान के सम्राट् सिकन्दर महान् का आक्रमण हो रहा था। और उसने उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त एवं पंजाब पर अपना अधिकार जमा लिया था। चन्द्रगुप्त ने यूनानियों की वीरता की प्रशंसा सुनी थी। चाणक्य की सम्मति से वह सिकन्दर महान की सेना में बेधड़क चला आया और उन विदेशियों की सेना में भरती हो गया।

चन्द्रगुप्त को यूनानी सेना में रहते अभी बहुत समय नहीं बीता था कि उसका क्षत्रिय तेज भड़क उठा। भारतीय क्षत्रियों का लहू उसकी नसों में खौल रहा था। वह स्वाभिमान खोकर अपना जीवन मलीन

करना नहीं चाहता था। एक दिन बातों ही बातों में सिकन्दर से उसकी बिगड़ गई। सिकन्दर का साथ छोड़कर वह कहीं चल दिया। अब चन्द्र गुप्त के भाग्य का सितारा चमका। चाणक्य के सहयोग से उसने नन्दराजे को हरा दिया। चन्द्रगुप्त मगध का अधिपति हो गया, और उसने अपना राज्य सारे भारतमें फैला दिया। राजा नन्द की पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से हुआ।

चन्द्रगुप्त ने यूनानी राजा सैल्युकस को भी बड़ी वीरता से हराया। सैल्युकस ने अपनी पुत्री चन्द्रगुप्त को विवाह दी, व काबुल, कन्धार व ईरान के प्रदेश भी भेंट किये। चन्द्रगुप्त ने भारत के बाहर के राजाओं को भी अपने प्रभाव से वश में कर लिया। प्रजा उसके राज्य में रामराज्य के सुख भोगने लगी। धर्म और सत्य की बढ़वारी हुई।

चन्द्रगुप्त जैनधर्म का दृढ़ श्रद्धानी था। सदैव गृहस्थ का धर्म पालता था। उसने पशुओं की रक्षा के लिए भी हस्पताल खुलवाये थे। वह बड़ा दानी तथा जीव दया प्रचारक था। एक बार चन्द्रगुप्त ने जैनगुरु श्री भद्रबाहु स्वामी का उपदेश सुना। उसे वैराग्य हो गया और अपने पुत्र बिंदुसार को राज्य देकर वह साधु हो गया।

दक्षिण भारत के श्रवणबेलगोल नामक पवित्र स्थान पर इसने गुरु का समाधि मरण कराया, उनकी खूब सेवा की। गुरु तो स्वर्ग पधारे। पीछे चन्द्रगुप्त ने भी जैन मुनि हो कर जन्म भर तप किया और स्वर्ग पाया।

चन्द्रगुप्त ने २२ वर्ष तक राज्य किया। इसका समय सन् ईस्वी ३२२ पूर्व से २९८ पूर्व तक रहा। चन्द्रगुप्त संसार में एक आदर्श सम्राट् हुआ। उसकी शासन पद्धति अत्यन्त उत्तम थी। उसके पास एक बड़ी भारी सेना थी। देश में हर एक को सुख था। जनता की आर्थिक दशा बड़ी अच्छी थी। बाहर विदेशों से भी यात्री आते थे। इसके दरबार में मेगस्थनीज नाम का यूनानी राजदूत रहता था। उसने चन्द्रगुप्त के राज्य का हाल लिखा है। बालको! तुम भी चन्द्रगुप्त के समान धीरता और वीरता से काम लो। यदि ऐसा करोगे तो सफलता का मुकुट तुम्हारे शिर पर सोहेगा।

प्रश्नावली

१ चन्द्रगुप्त किस वंश में उत्पन्न हुये थे और बताओ उनके वंश का यह नाम किस प्रकार पड़ गया था?
२ चन्द्रगुप्त के गुरु कौन थे और वे क्या चाहते थे?
३ चन्द्रगुप्त कौन २ सी विद्याओं में निपुण थे? और उन्होंने

मगध का राज्य किस प्रकार प्राप्त करके अपना विवाह किसके साथ किया था ?

४ चन्द्रगुप्त ने अपना राज्य किस प्रकार चलाया और क्यों कर अपनी प्रजा का पालन किया ?

५ चन्द्रगुप्त ने अपना अन्तिम काल किस प्रकार सफल किया ?

६ मेगेस्थनीज कौन था, उसके बारे में तुम क्या जानते हो ?



पाठ ३

अष्टमूल गुण

मूल जड को कहते हैं। जैसे जड के बिना पेड़ नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार कुछ नियम ऐसे होते हैं कि जिनका पालन किये बिना मनुष्य धर्म मार्ग पर नहीं चल सकता। इसलिए धर्म पालन के सब से पहले मुख्य नियमों को मूल गुण कहते हैं।

जिन मुख्य नियमों को पहले पालन किए बिना मनुष्य श्रावक नहीं कहला सकता, वे ही नियम श्रावक के मूलगुण कहलाते हैं। वे मूलगुण ८ हैं।

(१) मद्य त्याग (२) मांस त्याग (३) मधुत्याग (४) अहिंसा (५) सत्य (६) अचौर्य (७) ब्रह्मचर्य (८) परिग्रह परिमाण।

(१) मद्यत्याग—शराब वगैरह नसीली चीजों के सेवन का त्याग मद्य त्याग है। शराब अनेक पदार्थों के सड़ाने से पैदा होती है। सड़ाने से अनेक कीड़े पैदा होते और मरते रहते हैं। जीव हिंसा के बिना शराब किसी प्रकार तैयार नहीं हो सकती। इसलिए शराब पीने से जीव हिंसा का पाप लगता है शराब पीने से मनुष्य पागल सा हो जाता है उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता। शराबी के मुख में कुत्ते पेशाब कर जाते हैं। इसी प्रकार शराबी की और भी दुर्गति होती है। इस लिए शराब नहीं पीना चाहिए। तथा भंग, गांजा, अफीम कोकीन, चरस, तम्बाकू बीड़ी चुरट आदि और भी नशीली चीजों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए।

(२) मांसत्याग—मांस खाने का त्याग करना मांस त्याग कहलाता है। मांस त्रस जीवों के घात से उत्पन्न होता है। उसमें अनेक जीव पैदा होते और मरते रहते हैं। मांस के छूने मात्र से ही जीव मर जाते हैं। इसलिए जो मांस खाता है वह बड़ी हिंसा करता है। मांस खाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। मांस खाने वालों के परिणाम क्रूर हो

जाते हैं। मांस खाने से शरीर पुष्ट नहीं होता। इस लिए भी सभी स्त्री पुरुषों को मांस छोड़ना ही उचित है।

(३) मधुत्याग—शहद खाने का त्याग मधु त्याग है। शहद मक्खियों का उगाल(वमन) होता है। मधु में हर समय सूक्ष्म-त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। मधु मक्खियों के छत्ते को निचोड़ कर निकला जाता है। छत्ते में छोटी २ मक्खियां रहती हैं। छत्ते को निचोड़ते समय ये सब मर जाती हैं, और शहद में उन सबका निचोड़ आ जाता है इसलिए ऐसी अपवित्र हिंसा की खान, घृणा करने वाली चीज का त्याग करना ही उचित है।

(४) अहिंसा अणुव्रत—जान बूझकर इरादा करके जन्तुओं की हत्या करने से बचना अहिंसा अणुव्रत है। किसी भी मानव को धर्म के नाम से पशुओं की बलि न करनी चाहिए। न शिकार के लिए मारना चाहिए। न ऐसा शौक़ चमड़े, रेशम व हिंसाकारी वस्तुओं के व्यवहार का करना चाहिए जिससे जन्तुओं का अधिक घात हो। खेती, व्यापार, शिल्प, राज्य प्रबन्ध सम्बन्धी हिंसा गृहस्थों से छूट नहीं सकती। इसे आरम्भी हिंसा

(१) मद्यत्याग—शराब वगैह नसीली चीजों के सेवन का त्याग मद्य त्याग है। शराब अनेक पदार्थों के सड़ाने से पैदा होती है। सड़ाने से अनेक कीड़े पैदा होते और मरते रहते हैं। जीव हिंसा के बिना शराब किसी प्रकार तैयार नहीं हो सकती। इसलिए शराब पीने से जीव हिंसा का पाप लगता है शराब पीने से मनुष्य पागल सा हो जाता है उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता। शराबी के मुख में कुत्ते पेशाब कर जाते हैं। इसी प्रकार शराबी की और भी दुर्गति होती है। इस लिए शराब नहीं पीना चाहिए। तथा भंग, गांजा, अफीम कोकीन, चरस, तम्बाकू बीड़ी चुरट आदि और भी नशीली चीजों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए।

(२) मांसत्याग—मांस खाने का त्याग करना मांस त्याग कहलाता है। मांस त्रस जीवों के घात से उत्पन्न होता है। उसमें अनेक जीव पैदा होते और मरते रहते हैं। मांस के छूने मात्र से ही जीव मर जाते हैं। इसलिए जो मांस खाता है वह बड़ी हिंसा करता है। मांस खाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। मांस खाने वालों के परिणाम क्रूर हो

जाते हैं। मांस खाने से शरीर पुष्ट नहीं होता। इस लिए भी सभी स्त्री पुरुषों को मांस छोड़ना ही उचित है।

(३) मधुत्याग—शहद खाने का त्याग मधु त्याग है। शहद मक्खियों का उगाल(वमन) होता है। मधु में हर समय सूक्ष्म-त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। मधु मक्खियों के छत्ते को निचोड़ कर निकला जाता है। छत्ते में छोटी २ मक्खियां रहती हैं। छत्ते को निचोड़ते समय वे सब मर जाती हैं, और शहद में उन सबका निचोड़ आ जाता है इसलिए ऐसी अपवित्र हिंसा की खान, घृणा करने वाली चीज का त्याग करना ही उचित है।

(४) अहिंसा अणुव्रत—जान बूझकर इरादा करके जन्तुओं की हत्या करने से बचना अहिंसा अणुव्रत है। किसी भी मानव को धर्म के नाम से पशुओं की बलि न करनी चाहिए। न शिकार के लिए मारना चाहिए। न ऐसा शौक चमड़े, रेशम व हिंसाकारी वस्तुओं के व्यवहार का करना चाहिए जिससे जन्तुओं का अधिक घात हो। खेती, व्यापार, शिल्प, राज्य प्रबन्ध सम्बन्धी हिंसा गृहस्थी से छूट नहीं सकती। इसे आरम्भी हिंसा

कहते हैं। जीव दया के लिए पानी छान कर पीना चाहिए। बिना छाना पानी पीने से बहुत त्रस जीवों की हिंसा होती है। जीव दया के लिए रात्रि को भोजन न करने का भी जहाँ तक हो सके अभ्यास करना चाहिए। रात्रि भोजन से बहुत से जन्तुओं की हिंसा होती है, जो रात्रि को अधिक उड़ते हैं। सूर्य के प्रकाश में भोजन करने से भोजन पाचक भी होता है।

(५) सत्य अणुव्रत—पीड़ाकारी वचन कभी नहीं कहने चाहिए। झूठ बोलने से दूसरों को कष्ट पहुँचता है। झूठ बोलकर अपना मतलब निकालना धनादि कमाना पाप है। असत्य हिंसा का ही अंग है।

(६) अचौर्य अणुव्रत—बिना दी हुई वस्तु रागवश उठा लेना चोरी है। मनुष्य को सत्य व्यवहार करना चाहिए। चोरी करने से दूसरे के प्राणों को कष्ट पहुँचता है। यह भी हिंसा का भेद है।

(७) ब्रह्मचर्य अणुव्रत—ब्रह्मचर्य बड़ा गुण है। जब तक विवाह न हो पूर्ण ब्रह्मचर्य पालना उचित है। विवाह हो जाने पर अपनी पत्नी से संतोष रखना उचित है। पर स्त्री का त्याग होना चाहिए।

(८) परिग्रहण परिमाण—गृहस्थ को जितनी इच्छा व ज़रूरत हो उतनी सम्पत्ति का परिमाण करलेना चाहिए। जब उतना धन हो जावे तब सन्तोष से अपना जीवन धर्मध्यान व परोपकार में बिताना चाहिये।

नोट—किन्हीं आचार्यों ने मद्य, मांस, मधु और पाँच उदम्बर के त्याग को ही अष्टमूलगुण कहा है।

पाँच उदम्बर यह हैं:—(१) बड़फल (२) पीपलफल (३) पाकर (पिलखन) (४) गूलर (५) कटूमर (अंजीर) इनमें त्रसजीव पाये जाते हैं। इनमें से कभी किसी फल में साफ नहीं दिखलाई पड़ते हैं, तो भी उनके पैदा होने की सामग्री है। इसकारण जीवदया के लिए उनका त्याग ही उचित है।

मद्य, मांस, मधु इन तीनों को मकार कहते हैं, क्यों कि इन तीनों का पहला अक्षर 'म' है।

प्रश्नावली

१ मूलगुण किसे कहते हैं? और इनका पालन कौन करता है? यह भी बताओ कि इन गुणों का नाम "मूलगुण" क्यों पड़ा?

२ मूल गुण कितने होते हैं? नाम बताओ।

३ मद्य, माँस व मधु सेवन में क्या बुराई है? अहिंसाणुव्रत का धारी इन वस्तुओं का सेवन करेगा या नहीं?

कहते हैं। जीव दया के लिए पानी छान कर पीना चाहिए। बिना छाना पानी पीने से बहुत सूक्ष्म जीवों की हिंसा होती है। जीव दया के लिए रात्रि को भोजन न करने का भी जहाँ तक हो सके अभ्यास करना चाहिए। रात्रि भोजन से बहुत से जन्तुओं की हिंसा होती है, जो रात्रि को अधिक उड़ते हैं। सूर्य के प्रकाश में भोजन करने से भोजन पाचक भी होता है।

(५) सत्य अणुव्रत—पीड़ाकारी वचन कभी नहीं कहने चाहिए। झूठ बोलने से दूसरों को कष्ट पहुँचता है। झूठ बोलकर अपना मतलब निकालना धनादि कमाना पाप है। असत्य हिंसा का ही अंग है।

(६) अचौर्य अणुव्रत—बिना दी हुई वस्तु रागवश उठा लेना चोरी है। मनुष्य को सत्य व्यवहार करना चाहिए। चोरी करने से दूसरे के प्राणों को कष्ट पहुँचता है। यह भी हिंसा का भेद है।

(७) ब्रह्मचर्य अणुव्रत—ब्रह्मचर्य बड़ा गुण है। जब तक विवाह न हो पूर्ण ब्रह्मचर्य पालना उचित है। विवाह हो जाने पर अपनी पत्नी से संतोष रखना उचित है। पर स्त्री का त्याग होना चाहिए।

(८) परिग्रहण परिमाण—गृहस्थ को जितनी इच्छा व ज़रूरत हो उतनी सम्पत्ति का परिमाण करलेना चाहिए। जब उतना धन हो जावे तब सन्तोष से अपना जीवन धर्मध्यान व परोपकार में बिताना चाहिये।

नोट—किन्हीं आचार्यों ने मद्य, मांस, मधु और पाँच उदम्बर के त्याग को ही अष्टमूलगुण कहा है।

पांच उदम्बर यह हैं —(१) बड़फल (२) पीपलफल (३) पाकर (पिलखन) (४) गूलर (५) कटूमर (अंजीर) इनमें त्रसजीव पाये जाते हैं। इनमें से कभी किसी फल में साफ नहीं दिखलाई पड़ते हैं, तो भी उनके पैदा होने की सामग्री है। इसकारण जीवदया के लिए उनका त्याग ही उचित है।

मद्य, मांस, मधु इन तीनों को मकार कहते हैं, क्यों कि इन तीनों का पहला अक्षर 'म' है।

प्रश्नावली

१ मूलगुण किसे कहते हैं? और इनका पालन कौन करता है? यह भी बताओ कि इन गुणों का नाम *"मूलगुण"* क्यों पड़ा?

२. मूल गुण कितने होते हैं? नाम बताओ।

३ मद्य, माँस व मधु सेवन में क्या बुराई है। *अहिंसाणुव्रत* धारी इन वस्तुओं का सेवन करेगा *या नहीं।*

४ अहिंसाणुव्रत से क्या अभिप्राय है? खेती व्यापार आदि करने में हिंसा होती है या नहीं? तुम्हारी समझ में खेती व्यापार करने वाला गृहस्थी अहिंसाणुव्रत धारण कर सकता है या नहीं?

पाठ ४

अभक्ष्य

१-जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता हो जैसे बड़, पीपल आदि पांच उदम्बर फल। भिस (कमल डण्डी) घीया अन्न, गले सड़े फल जिनमें त्रस जीव पैदा हो जावें तथा मांस, मधु, द्विदल और चलित रस।

नोट-द्विदल कच्चे दूध, कच्चे दही और कच्चे दूध की जमी हुई वस्तुएँ उड़द, मूंग, चना आदि द्विदल वस्तु (जिसके दो टुकड़े बराबर २ हो जाते हैं) को मिला कर खाना।

चलित रस—वह पदार्थ जिनका स्वाद बिगड़ गया हो, जो मर्यादा से रहित हो गये हों, जैसे बदबूदार घी सुरसली वाला आटा तथा बहुत दिनों की बनी हुई मिठाई मुरब्बा, आचार आदि।

[२] जिन पदार्थों के खाने से अनन्त स्थावर जीवों का घात होता हो जैसे—आलू, अरवी, मूली, गाजर, लहसन, अदरक, प्याज शकरकन्द, कचालू, तुच्छफल (जिसमें बीज न पड़े हों व जो बहुत छोटे हों और बड़े हो सकते हों)

[३] जो पदार्थ प्रमाद तथा काम विकार के बढ़ाने वाले हों जैसे—शराब, कोकीन, भंग, चरस, तम्बाकू आदि नशीली चीजें, माजून आदि।

(४) अनिष्ट—पदार्थ अर्थात् ऐसे पदार्थ जो खाने योग्य तो हों, परन्तु शरीर को हानि पहुंचावें जैसे, खाँसी दमा रोग वाले को मिठाई खाना, बुखार वाले को घी खाना, अधपका कच्चा देर से पचने वाला, अपनी प्रकृति विरुद्ध भोजन।

(५) अनुपसेव्य—वे पदार्थ जिनको अपने देश समाज तथा धर्म वाले लोग बुरा समझें।

इसके सिवाय मक्खन, चमड़े के कुप्पे, तराजू आदि में रखे हुए तथा छूवे हुए घी, हींग, सिरका आदि पदार्थ भी अभक्ष्य हैं।

प्रश्नावली

१ अभक्ष्य से तुम क्या समझते हो ? और यह कितने प्रकार का होता है ? बताओ।

२ द्विदल किसे कहते हैं ? दही में डाले हुए बड़े के बड़े द्विदल हैं या नहीं ?

३ चलित रस किसे कहते हैं ? बहुत दिनों की बनी हुई मिठाई पुराना अचार और एक माह का पिसा हुआ आटा चलित रस हैं या नहीं और क्यों ?

४ बताओ अभक्ष्य खाने से क्या हानि है ?

५ अनिष्ट और अनुपसेव्य किसे कहते हैं ? और कौन से पदार्थ अनिष्ट और अनुपसेव्य की श्रेणी में गिने जा सकते हैं ?

पाठ ५

दरश दिखायो है

सवैया

[१]

त्याग जग राग, ले वैराग, पाग निज रस,
आतम में लीन होय, आसन लगायो है।
देख वीतराग रूप शान्ति स्वरूप छवि,
ध्यान की अनूपता से मन हर्षायो है॥

आप के बताए हित मग पर पग रख,
जगत के जीवन ने लाभ अति पायो है।
धन धन वीर महावीर जिनराज आन,
मम अहोभाग्य तुम दरश दिखायो है॥

[२]

(दि)या उपदेश दया धरम का हितरूप,
हिंसा में पाप महापाप बतलायो है।
(त)ज के कषाय अरु विषयों की वासना को,
आतम कल्याण करो मग यह सुझायो है॥
(प)र से ममत छोड़ निज से स्नेह जोड़,
आतम में लीन निजाधीन पद पायो है॥
(ध)न धन ऐसे महावीर जिनराज आज,
मम अहोभाग्य तुम दरश दिखायो है॥

(ज्योतिप्रसाद)

—x—

प्रश्नावली

इस कविता के रचयिता कौन हैं, उनके सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो?

भगवान महावीर का उपदेश संक्षेप में अपने शब्दों में वर्णन करो।

आत्महित का मार्ग क्या है?

वीतराग शान्त छवि से क्या समझते हो?

पाठ ६
कर्म

प्यारे बालको! तुम नित प्रति संसार में देखते हो, कोई सवेरे से शाम तक कठिन परिश्रम करता है, फिर भी उसे सफलता प्राप्त नहीं होती कोई थोड़े ही परिश्रम से अपने कार्य में सफलता प्राप्त करलेता है। कोई २ थोड़े परिश्रम करने से ही अधिक विद्या सम्पादन कर लेते हैं और कोई २ घोर परिश्रम करने पर भी मूर्ख बने रहते हैं। कितने ही लोग धन उपार्जन के लिए दिन-रात नहीं गिनते, फिर भी दरिद्रता उनका पीछा नहीं छोड़ती। स्वामी और सेवक में से सेवक ही अधिक परिश्रम करता है, और यही निर्धन होता है। ऐसी ऐसी बातों पर विचार करने से विदित होता है कि जहाँ छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये परिश्रम की आवश्यकता है वहाँ साथ ही किसी और शक्ति विशेष की भी आवश्यकता है। वह शक्ति कर्म है, जिसे लोग भाग्य कहा करते हैं। जब कर्म परिश्रम के अनुकूल होता है, तभी कार्य में सफलता प्राप्त होती है। देखो, दो छात्र साथ पढ़ते हैं, समान परिश्रम करते हैं, उनमें से एक

परीक्षा के समय बीमार हो जाता है, परीक्षा देने नहीं पाता। दूसरा परीक्षा देकर पास हो जाता है, यह सब कर्म का माहात्म्य है। पहिले विद्यार्थी ने क्या कुछ कम परिश्रम किया था ?

यह भी ध्यान रहे कि यदि अकेले "कर्म" के भरोसे निठल्ले बैठे रहोगे और हाथ पैर न हिलाओगे तो सफलता नहीं मिलेगी। सफलता तो प्रयत्न से मिलती है, किंतु उसके लिए कर्म की अनुकूलता होनी चाहिये। कर्म-कर्म कहते सभी हैं परन्तु कर्म के मर्म को कोई नहीं जान । आओ तुम्हें संक्षेप में इस पाठ में कर्म का कुछ रहस्य समझावें।

कर्म—उन पुद्गल परमाणुओं को कहते हैं जो आत्मा का असली स्वभाव प्रकट नहीं होने देते। जैसे बादल सूर्य सामने आकर उसके प्रकाश को ढक देते हैं उसी प्रकार बहुत से पुद्गल परमाणु (छोटे २ टुकड़े) जो इस लोक में सब जगह भरे हुए हैं, आत्मा में क्रोधादि कषायों के पैदा होने से खिंच कर आत्मा के प्रदेशों से मिलकर आत्मा के स्वभाव को ढक देते हैं। कषायों क सबन्ध से उन पुद्गल परमाणुओं में दु ख देने की शक्ति भी हो जाती है। इन्हीं पुद्गल परमाणुओं को कर्म कहते हैं।

कर्म आठ हैं (१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय।

१—ज्ञानावरण—कर्म उसे कहते हैं जो आत्मा के ज्ञान गुण को प्रगट न होने दे। जैसे एक प्रतिमा पर पर्दा डाल दिया जावे, तो वह प्रतिमा को ढके रहता है उसे प्रगट नहीं होने देता। इसी प्रकार ज्ञानावरणी कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को ढके रहता है प्रगट नहीं होने देता। जैसे मोहन अपना पाठ खूब परिश्रम से याद करता है, परन्तु उसे याद नहीं होता, इससे मोहन के ज्ञानावरण कर्म का उदय समझना चाहिए। ईर्षा से सच्चे उपदेश की प्रशंसा न करना, अपने ज्ञान को छुपाना अर्थात् दूसरों के पूछने पर न बताना। दूसरा को इस भाव से कि पढ़ कर मेरे बराबर हो जायगा, नहीं पढ़ाना। दूसरों के पढ़ने में विघ्न डालना, उनकी पुस्तकें छुपा देना, बिगाड़ देना, दूसरों को सत्य उपदेश देने तथा सुनने से रोकना। सच्चे उपदेश को दोष लगाना, गुरु और विद्वानों की निन्दा करना, पढ़ने में आलस्य करना। इत्यादि कार्यों से ज्ञानावरण कर्म बँधता है। जितना २ ज्ञानावरण कर्म हटता जाता है—ज्ञान चमकता जाता है।

२—दर्शनावरण कर्म—उसे कहते हैं जो आत्मा के दर्शन गुण को प्रगट न होने दे। जैसे एक राजा का दरबान पहरे पर बैठा हुआ है, वह किसी को भी अन्दर जाकर राजा के दर्शन नहीं करने देता सबको बाहर से ही रोक देता है। इसी प्रकार दर्शनावरण कर्म किसी को दर्शन नहीं होने देता। जैसे सोहन मन्दिर में दर्शन करने के लिए गया, परन्तु मदिर का ताला लगा पाया, इससे समझना चाहिए कि सोहन के दर्शनावरण कर्म का उदय है।

३—वेदनीय कर्म- उसे कहते हैं जो आत्मा के लिए सुख दुख की सामग्री का सबब मिलाये। इस कर्म के उदय से ससारी जीवों को ऐसी चीज का मिलाप होता है जिनके कारण वह सुख दुख मालूम करते हैं। जैसे शहद लपेटी तलवार की धार चाटने से सुख दुख दोनों होते हैं अर्थात् शहद मीठा लगता है, इससे तो सुख होता है, परन्तु तलवार की धार से जीभ कट जाती है, इस से दुख होता है। इस प्रकार वेदनीय कर्म सुख और दुख दोनों देता है। जैसे प्रकाशचन्द ने लड्डू खाया अच्छा लगा और पैर में काँटा गड़ गया दुख हुआ। दोनों ही हालतों में वेदनीय कर्म का उदय समझना चाहिए।

वेदनीय कर्म के दो भेद हैं। (१) सातावेदनीय

(२) असाता वेदनीय।

साता वेदनीय कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से सुख देने वाली वस्तुएँ मिलें।

असाता वेदनीय—उसे कहते हैं जिसके उदय से दुख देने वली वस्तुएँ मिलें।

सब जीवों पर दया करना, चार प्रकार का दान देना, पूजन करना, व्रत पालन करना क्षमा धारण करना, लोभ नहीं करना, संतोष धारण करना, समता भाव से दुख सह लेना, इत्यादि कार्यो से सातावेदनीय (सुख देने वाला कर्म) का बन्ध होता है।

अपने आपको या दूसरे को दुख देना, शोक में डालना, पछतावा करना-कराना, मारना, पीटना, रोना, रुलाना तथा रो रो कर ऐसा विलाप करना कि सुनने वाले का दिल धड़क उठे। इस प्रकार के कार्यों से असाता वेदनी कर्म का बन्ध होता है।

४—मोहनी कर्म—जिसके उदय से यह आत्मा अपने आपको भूल जावे और अपने से जुदी चीजों में लुभा जावे। जैसे शराब पीने वाला शराब पीकर अपने आपको भूल जाता है उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता और न वह भाई बहिन स्त्री पुत्रादि को पहिचान सकता है,

इसी प्रकार मोहनीय कर्म इस जीव को भुला देता है।

जैसे कोई शीतल, पीपल आदि को देव मानता है, तथा क्रोध में आकर किसी दूसरे के प्राणों का हरण करता है या लोभ के वश होकर दूसरे को लुटाता है तो समझना चाहिए कि उसके मोहनीय कर्म का उदय है।

मोहनीय कर्म सब कर्मों का राजा कहलाता है। इस लिये इसी पर विजय प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिए।

५—आयु कर्म उसे कहते हैं जो आत्मा को नरक, तिर्यञ्च मनुष्य और देव शरीरों में से किसी एक में रोके रक्खे, जैसे एक मनुष्य का पैर काठ में (शिकजे में) फँसा हुआ है, अब वह काठ उस मनुष्य को उस स्थान पर रोके हुए है। जब तक उसका पैर उस काठ में जकड़ा रहेगा तब तक वह मनुष्य दूसरी जगह नहीं जासकता। इसी प्रकार आयु कर्म इस जीव को मनुष्य तिर्यञ्च आदि के शरीर में रोके हुए हैं। जब तक आयु कर्म रहेगा तब तक वह जीव उसी शरीर में रहेगा। हमारा जीव मनुष्य शरीर में रुका हुआ है। इससे समझना चाहिए कि हमारे मनुष्य आयु कर्म का उदय है।

बहुत आरम्भ करने से, बहुत परिग्रह रखने से तथा घोर हिंसा करने से नरक आयु का बन्ध होता है अर्थात् ऐसा करने से जीव नरक में जाता है।

छल, कपट, दगा, फरेब करने से जीव के तिर्यंश्च आयु का बन्ध होता है, अर्थात् ऐसा करने से यह जीव तिर्यंश्च होता है।

थोड़ा आरम्भ करने से, थोड़ा परिग्रह रखने से, कोमल परिणाम रखने से, परोपकार करने, दया पालने से मनुष्य आयु का बन्ध होता है। अर्थात् ऐसा करने से यह जीव मनुष्य पैदा होता है।

व्रत उपवास आदि करने से, शांतिपूर्वक भूख प्यास गर्मी सर्दी आदि के दुःख सहने से, सत्य धर्म का प्रचार करने से, सत्य धर्म की प्रभावना करने से, इत्यादिक और शुभ कारणों से यह जीव देव होता है।

६—नाम कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से इस जीव के अच्छे या बुरे शरीर और उसके अंगोपांग की रचना हो। जैसे कोई चित्रकार (तसवीर बनाने वाला) अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, कोई मनुष्य का, कोई स्त्री का, कोई घोड़े का और कोई हाथी का।

किसी का हाथ लम्बा, किसी का छोटा, कोई कुबड़ा कोई बौना, कोई रूपवान, कोई भद्दा। इसी प्रकार नाम कर्म भी इसी जीव को कभी सुन्दर, कभी चपटी नाक वाला, कभी लम्बे दाँत वाला, कभी कुबड़ा, कभी काला कभी

कभी सुरीली आवाज वाला कभी मोटी आवाज वाला, अनेक रूप परिणमाता है। हमारा शरीर, नाक, कान, आंख, हाथ, पाँव आदि सब अंगोपांग नाम कर्म के उदय से ही बने हुए हैं।

इस कर्म के दो भेद हैं अशुभ नाम कर्म और शुभनाम कर्म। कुटिलता से, घमण्ड करने से, आपस में लड़ाई झगड़ा कलह करने से, झूठे देवों को पूजने से, किसी की चुगली करने से, दूसरों का बुरा सोचने से तथा दूसरों की नकल करने से, अनेक अशुभ कार्यों से अशुभ नाम कर्म का बन्धन होता है।

सरलता से, आपस में प्रेम रखने से, धर्मात्मागुणी जनों को देख कर खुश होने से, दूसरों का भला चाहने से इत्यादि और शुभ कारणों से शुभ नाम कर्म का बन्ध होता है।

७-गोत्र कर्म- उसे कहते हैं जो इस जीव को ऊँच कुल या नीच कुल में पैदा करे- जैसे कुम्हार छोटे बड़े सब प्रकार के बरतन बनाता है, उसी प्रकार गोत्र कर्म इस जीव को उच्च या नीच बना देता है। उच्च गोत्र कर्म के उदय से यह जीव अच्छे चारित्र वाले लोक मान्य कुल में जन्म लेता है और नीच गोत्र कर्म के उदय

४ असाता वेदनीय, चारित्र मोहनीय, शुभ नाम कर्म
ऊँच गोत्र किन किन कारणों से बँधते हैं ?

५ सबसे बड़ा कर्म कौनसा है ? ज्ञानावरणी, दर्शनाव
कर्म का क्या काम है ?

६ बताओ तुम्हें मनुष्य शरीर में रोकने वाला कौनसा
है ? और कौन से कार्य करने में तुम्हें मनुष्यगति मिली

७ अन्तराय कर्म किसे कहते हैं ? एक लड़की के माता
ने जबरदस्ती अपनी लड़की को पाठशाला से उठा लि
तो बताओ उसके माता पिता को कौनसा कर्म बँध हुआ

८ बताओ नीचे लिखों का किन २ कर्मों का उदय हुआ है

(क) श्याम ने वर्ष भर तक खूब कठिन परिश्रम किया
परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुआ ।

(ख) मोहन नित प्रति दीन दुखी जीवों को करुणाबुद्धि से
वस्त्र आदि का दान देता है । परन्तु लोग फिर भी
निन्दा करते हैं ।

(ग) यद्यपि राम के यहाँ नित प्रति अच्छे २ स्वादिष्ट फल
को आते हैं पर डाक्टर ने उसे खाने से मना किया हु

(घ) सोहन बड़ा आलसी है, तमाम दिन रहता

(ङ) गोविन्द बड़ा मालदार है, हम
तथा कन्या पाठशाला के चन्दा
इतना कंजूस है कि वह

(घ) मोहन की आँखों में ऐसा दर्द हुआ कि अन्त में बिचारा अन्धा ही हो गया।

६ समझा कर बताओ कि नीचे लिखों को किन २ कर्म का बन्ध हुआ —

(क) लड़के के फेल हो जाने पर श्याम ने अध्यापकों को बड़ी गालियाँ दीं। और पाठशाला को ताला लगा कर छोड़ा।

(ख) पाठशाला से आते हुए, कुछ छात्रों को एक शराबी ने बड़ी गालियाँ दीं। उनकी पुस्तकें फाड़ डालीं, किसी की आंख फोड़ दीं, किसी की टाँग तोड़ दीं।

(ग) राम कैसे धर्मात्मा आदमी हैं नित प्रति मन्दिर में शास्त्र पढ़ते हैं, कुछ वेतन नहीं लेते, पर फिर भी लोग मन्दिर से बाहर निकलते ही उनकी निन्दा किया करते हैं और बुरे से बुरा लाछन लगाने को तय्यार रहते हैं।

(घ) सोहन बड़ा अभिमानी है। आज त्यागी जी महाराज और हम एक छात्र की सहायता के लिये गये, बात तक नहीं सुनी, तेवड़ी में बल डाल लिया और मुंह से हमें बाहर खड़ा कर घर में घुस गया।

(ङ) सुभद्रा सवेरे सात बजे से आठ बजे तक मन्दिर में बैठी रहती है, जो कोई भी लड़की या स्त्री आती है, किसी को आलोचना पाठ व भक्तामर सुनाती है किसी को किसी मत की कथा सुनाती है और किसी से पैसा तक नहीं लेती।

(च) क्या कहने हैं राम के। बड़ा उद्दण्ड है। मन्दिर में आता है वहाँ भी चुपका नहीं रहता। किसी की निन्दा, तो किसी को गाली। महामानी। जो मिल जाय उसी को धमकाना। किसी की पूजा में विघ्न डालना तो किसी को स्वाध्याय न करने देना। निराले ही ढंग का आदमी है।

पाठ ७

भजन (रे मन!)

(१)

रे मन! भज भज दीन दयाल,
जा को नाम लेत इक छिन में।
कट कोटि अघ जाल,
रे मन! भज भज दीन दयाल।

(२)

परम ब्रह्म परमेश्वर स्वामी,
देखे होत निहाल।
सुमरन करत परम सुख पावत,
सेवत भाजै काल।
रे मन! भज भज दीन दयाल,

(३)

इन्द्र फनींन्द्र चक्रधर गावें।
जा को नाम रसाल,
जा को नाम ज्ञान परकाशै।
नाशै मिथ्या जाल
रे मन! भज भज दीन दयाल।

(४)

जा के नाम समान नहीं कुछ,
ऊरध मध्य पताल।
सोई नाम जपो नित 'द्यानत',
छांडि विषय विकराल।
रे मन! भज भज दीन दयाल॥

प्रश्नावली

१ दीन दयाल से तुम क्या समझते हो? और बताओ दीन दयाल कौन है?
२ परमात्मा का नाम जपने से क्या लाभ है?
३ बताओ इस भजन के बनाने वाले कौन हैं?
४ इस भजन का तीसरा छन्द कण्ठस्थ सुनाओ।
५ इस पद को पढ़कर सुनाओ और इसका अर्थ भी समझाओ।

पाठ ८

जम्बु कुमार

तीर्थंकर महावीर स्वामी के समय की बात है। उस समय मगध देश में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उस समय के राजाओं में श्रेणिक बहुत प्रसिद्ध और पराक्रमी राजा था। राजग्रही उसकी राजधानी थी। वहीं पर उसका राज्य सेठ रहता था। उसका नाम जिनदत्त था। जम्बुकुमार इसी राज्य सेठ का पुत्र था।

जम्बुकुमार ने जब होश सँभाला, तो उसे ऋषिगिरि जैन आश्रम में पढ़ने के लिए भेज दिया गया। वहाँ जम्बुकुमार ने एक ब्रह्मचारी का जीवन बिताया था और अपने गुरुओं की आज्ञानुसार शास्त्र विज्ञान, कला कौशल और शस्त्र की शिक्षा पाई थी। इसी प्रकार तपोवन में गुरुओं की संगति में रहते हुए युवावस्था तक पहुँचते २ जम्बुकुमार शस्त्र शास्त्र में निपुण हो गया। गुरुजन ने उसको अपने आश्रम से विदा किया। वह विनय पूर्वक गुरुजन का आशीर्वाद लेकर घर आया, माता पिता अपने पुत्र को सब विद्याओं में निपुण देख कर फूले अंग न समाये।

तपोवन में रहने से जम्बुकुमार का स्वभाव बड़ा
ालु और सत्यनिष्ट हो गया था, उसके मन को दुनिया-
ी की थोथी बातें नहीं रिझा पाती थीं। सत्य और
ाप के लिए वह अपना सब कुछ देने के लिए तैयार
ता था। इन गुणों के साथ २ जम्बुकुमार देखने में
ा सुन्दर और रूपवान था। उसके रूप और गुणों की
ां सारे राजमहलों में होती थी।

षाज्य सेठ ने देखा, कि उसका पुत्र विवाह के योग्य
गया है, उसको उसका विवाह करने की चिन्ता हुई।
र सेठों की पुत्रियों के साथ जम्बुकुमार का सम्बन्ध-
श्चित किया गया।

राजा श्रेणिक को खबर मिली कि रत्नचूल नामक
द्याधर राजा उसके विरुद्ध होगया है। उसे शत्रु को
 करने की चिन्ता हुई। एक दिन सभा में राजा
णिक ने कहा कि "कौन योद्धा ऐसा है, कि जो शत्रु
ो वश कर सके।" सभा में सेठ-कुमार जम्बुकुमार भी
ठा था। वह झट से उठकर खड़ा हो गया और कहा
मैं वश कर के लाऊँगा।" राजा ने आज्ञा देदी।
न्त्रियों की राय से राजा श्रेणिक ने जम्बुकुमार को सेना
कर रत्नचूल को वश करने के लिये भेजा।

जम्बुकुमार ने अपने रण कौशल्य से उस राजा को जीत लिया। वैश्य पुत्र होते हुए भी उस वीर ने उस क्षत्रिय की वीरता को परास्त कर दिया। राजा श्रेणिक जम्बुकुमार की इस विजय पर बड़े प्रसन्न हुए और कुमार का बड़ा ही सम्मान किया।

जब जम्बुकुमार विजय का डंका बजाते हुए राजग्रही में प्रवेश कर रहे थे, तब नगर के बाहर वन में श्रीसुधर्माचार्य का उपदेश हो रहा था। जम्बुकुमार भी सुनने बैठ गए। उपदेश सुनकर कुमार को संसार से वैराग्य हो गया। कुमार ने यह ठान ली कि घर जाकर हम अब विवाह नहीं करेंगे और कल ही आकर साधु हो जायेंगे और आत्म कल्याण करेंगे।

इधर माता पिता जम्बुकुमार की वीरता के समाचार सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। पुत्र ने अवसर पाकर पिता को अपने दीक्षा लेने का विचार कह दिया और विवाह करने से इन्कार कर दिया। यह खबर जब उन लड़कियों को पहुँची, जिनके साथ जम्बुकुमार का सम्बन्ध हुआ था, तो उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि "हम तो कुमार को छोड़ कर और किसी के साथ विवाह नहीं करेंगी।" लड़कियों की ऐसी हठ होने पर माता पिता के अति आग्रहवश

चारों वधुवें रात्रि को जम्बुकुमार को अपनी रसीली ली बातों से मोहित करने लगीं। कुमार वैराग्यभरी तों से ऐसा उत्तर देते थे कि वे मन में अपनी हार मान ती थीं।

सबेरा होते ही जम्बुकुमार अपने दृढ़ सकल्प वश घर चल पड़े। पीछे २ माता पिता, चारों स्त्रियां व एक थु तचर चोर जो चोरी करने आया था और कुमार र उनकी स्त्रियों की सब वार्तालाप सुन रहा था, चल दे। कुमार ने सुधर्माचार्य के पास केश लोंच कर ाधुव्रत ग्रहण किया। माता पिता चारों स्त्रियों ने व थु तचर चोर ने भी दीक्षा धारण की। अब जम्बुकुमार दल छग कर ध्यान करने लगे और शीघ्र ही वल ज्ञान को प्राप्त किया। ६२ वर्ष पीछे जम्बुकुमार ने मुक्ति प्राप्त की। केवल ज्ञान के पीछे श्रीजम्बुकुमार ने बहुत वर्षों तक ससार का बड़ा उपकार किया। मथुरा चौरासी का स्थान श्री जम्बुकुमार का निर्वाणक्षेत्र प्रसिद्ध है।

बालको! तुम भी जम्बुकुमार के जवन से शिक्षा ग्रहण करो। प्रतिज्ञा कर लो कि जब तक तुम खूब लिख पढ़ कर होशियार न हो जाओ विवाह नहीं करोगे। पढ़ते

हुए तुम पूरे ब्रह्मचारी रहोगे और व्यायाम करके शरीर को पुष्ट रक्खोगे। यदि तुम जम्बुकुमार के समान वीर सैनिक बनोगे तो अपने देश की सच्ची सेवा कर सकोगे तथा अपना आत्म कल्याण कर सकोगे। भावना करो तुम में से प्रत्येक जम्बुकुमार हो, और माता पिता का मुख उज्ज्वल करो।

प्रश्नावली

१ जम्बुकुमार किन के पुत्र थे? इन्होंने कहाँ तक अध्ययन किया था और इनका स्वभाव कैसा था?

२ जम्बुकुमार की वीरता के कार्य वर्णन करो।

३ जम्बुकुमार को कहाँ और क्यों वैराग्य हो गया था?

४ चारों स्त्रियाँ कौन थीं, जो जम्बुकुमार से गृहत्याग के समय पीछे २ गई थीं? जम्बुकुमार के वैराग्य होने के पश्चात् उन स्त्रियों ने क्या किया?

५ जम्बुकुमार को कहाँ पर निर्वाण हुआ था?

६ जम्बुस्वामी की जीवनी से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है?

अरहंत परमेष्ठी

पाठ ६

परमेष्ठी उसे कहते हैं जो परम पद में स्थित हो। परमेष्ठी पाँच हैं: १-अरहत, २-सिद्ध, ३-आचार्य, ४-उपाध्याय और ५-साधु।

यह पाँचों परम इष्ट हैं। इनका ध्यान करने से भावों की शुद्धि और वैराग्य की उत्पत्ति होती है।

अरहत परमेष्ठी के ४६ गुण

अरहन्त उसे कहते हैं जिनके ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय यह चार घातिया कर्म नाश हो गये हों और इनमें ४६ गुण हों और १८ दोष न हों।

चौतीसों अतिशय सहित प्रातिहार्य पुन आठ।
अनन्त चतुष्टय गुण सहित, ये छयालीसों पाठ ॥१॥

अर्थात् अरहन्त के ३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य और ४ अनत चतुष्टय ये सब ४६ गुण होते हैं। ३४ अतिशय में से १० अतिशय जन्म के होते हैं। दस केवल ज्ञान के होते हैं और १४ अतिशय देवकृत होते हैं। यह देवकृत अतिशय भी केवल ज्ञान होने पर होते हैं। अतिशय

ऐसी अद्भुत बात या अनोखी बात को कहते हैं जो साधारण मनुष्यों में न पाई जावे।

जन्म के दस अतिशय

अतिशय रूप सुगन्ध तन, नाहिं पसेव निहार।
प्रिय हित वचन अतुल्य बल, रुधिर श्वेत आकार॥
लक्षण सहसरु आठ तन, सम चतुष्क सन्ठान।
वज्रवृषभनाराच जुत, ये जनमत दश जान॥

(१) अत्यन्त सुन्दर शरीर (२) अतिसुगन्धमय शरीर (३) पसेव रहित शरीर (४) मलमूत्र रहित शरीर (५) प्यारे हित के वचन बोलना (६) अतुल्य बल (७) दूध समान सफेद रुधिर (८) शरीर में १००८ लक्षण (९) सम चतुस्र सस्थान (सुडौल सुन्दर आकार) १० वज्रवृषभ नाराच संहनन (हाड़ के वेष्टन और कीलों का वज्रमयहोना)

ये दस अतिशय तीर्थंकर भगवान् के जन्म से होते हैं।

केवल ज्ञान के दस अतिशय

योजन शत इकमें सुभिख, गगन गमन मुख चार।
नहिं अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार॥
सब विद्या ईश्वर पनो, नाहिं बढ़े नख केश।
अनिमिष दृग छाया रहित, दश केवल के वेश॥

(१) एक सौ योजन में सुभिक्षता अर्थात् जिस स्थान में एक केवली हो उनमें चारों तरफ सौ सौ योजन या ४०० कोस में सुकाल होगा। (२) पृथ्वी से अधर आकाश में गमन। (३) चारों ओर मुख का दिखाई देना। (४) हिंसा का अभाव। (५) उप सर्ग का न होना। (६) भगवान् के कवलाहार (ग्रासरूप आहार) न होना अर्थात् भोजन नहीं करना। (७) समस्त विद्याओं का स्वामीपना। (८) नाखून और बालों का न बढ़ना। (९) नत्रों की पलकें न झपकना। (१०) उनके शरीर की छाया का न पड़ना।

यह दस अतिशय केवलज्ञान के होने के समय तीर्थंकर तथा अन्य सर्व केवली अरहन्तों के प्रगट होते हैं।

देव कृत चौदह अतिशय

दोहा

देव रचित हैं चार दश, अर्द्ध मागधी भाष।
आपस माँही मित्रता, निर्मल दिश आकाश॥

होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी काँच समान।
चरण कमल तल कमल हैं, नमतें जय जय बान॥

मन्द सुगन्ध बयार पुनि, गन्धोदक की वृष्टि॥
भूमि विषै कण्टक नहीं, हर्ष मयी सब सृष्टि॥

धर्म चक्र आगे रहे, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्री अरहन्त के, ये चौंतीस प्रकार॥

अरहन्त भगवान के देव कृत यह चौदह अतिशय होते हैं।

(१) अर्द्ध मागधी (जिसको सब जीव समझ लेवें) भाषा का होना।

(२) समस्त जीवों म आपस में मित्रता होना।

(३) दिशाओं का निर्मल होना।

(४) आकाश का निर्मल होना।

(५) सब वस्तुओं के फल फूल तथा धान्य आदि का एक ही समय फलना।

(६) एक योजन तक की पृथ्वी का शीशे की तरह निर्मल होना।

(७) भगवान के चरण कमलों के नीचे सोने के कमलों का रचना।

(८) आकाश में जय जय होना।

(६) मन्द सुगन्धित पवन का चलना।

(१०) सुगन्धमय जल की वृष्टि होना।

(११) भूमि का कण्टक रहित होना।

(१२) सारी सृष्टि का आनन्दमय होना।

(१३) भगवान् के आगे धर्मचक्र का चलना।

(१४) छत्र, चमर, झारी, कलश, पखा, दर्पण, स्वस्तिक, ध्वजा, इन अष्ट मंगल द्रव्यों का होना।

इस प्रकार दस जन्म के, दस केवलज्ञान के और १४ देवकृत अतिशय मिलकर अरहन्त के कुल ३४ अतिशय होते हैं।

अष्ट प्रातिहार्य

दोहा

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार।
तीन छत्र सिर पर लसें, भामण्डल पिछवार ॥१॥
दिव्य ध्वनि मुखतें खिरे, पुष्प वृष्टि सुर होय।
ढारें चौसठ चमर जख, बाजे दुन्दुभि जोय ॥२॥

अर्थात् १—अशोकवृक्ष का होना।

२—उसके पास में ही छविदार सिंहासन का होना।

३—भगवान् के सिर पर तीन छत्रों का होना।

४—भगवान् की छवि का भामण्डल बन जाना।

५—दिव्य ध्वनि का होना अर्थात् भगवान् की अक्षर रहित सबके समझ में आने वाली अनुपम वाणी का खिरना।

६—देवों का फूलों की वृष्टि करना।

७—यक्ष जाति के देवों का भगवान् पर चँवर ढोलना।
८—दुन्दुभि बाजों का बजाना। य आठ प्रातिहार्य हैं।

अनंत चतुष्टय

दोहा

ज्ञान अनन्त अनन्त सुख, दर्श अनन्त प्रमाण।
बल अनन्त अरहन्त सो, इष्ट देव पहिचान ॥१॥

भगवान के अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त दर्शन और अनन्त बल होता है। इन्हें अनन्त चतुष्टय कहा है। जिसम यह अनन्त चतुष्टय पाये जाते हैं, वह इष्टदेव कहलाते हैं। यह सब अरहन्तों के होते हैं चाहे तीर्थंकर हों या अन्य।

३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य और ४ अनन्त चतुष्टय यह सब मिल कर अरहत भगवान् के कुल ४६ गुण होते हैं।

नोट—अरहत में नीचे लिखे १८ दोष नहीं पाये जाते।

दोहा

जन्म जरा तिरषा छुधा, विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद ॥१॥

राग द्वेष अरु मरन युत, ये अष्टादश दोष ।
नाहिं होत अरहन्त के, सो छविलायक मोष ॥२॥

१–जन्म २–जरा (बुढापा) ३–तृष्णा (प्यास) ४–क्षुधा (भूख) ५–विस्मय (आश्चर्य ६–आरत (पीड़ा) ७–खेद (दुःख) ८–रोग ९–शोक १०–मद ११–मोह १२–भय १३–निद्रा १४–चिन्ता १५–स्वेद (पसीना) १६–राग १७–द्वेष १८–मरण

नोट—इस पाठ में ऊपर लिखे ४६ गुण जिनमें पाये जायें और जो १८ दोषों से रहित हैं वही सच्चे देव अर्थात् अरहन्त कहलाते हैं। इन्हीं को जीवन मुक्त या साकार परमात्मा समझना चाहिए।

इन्हीं से धर्म का उपदेश मिलता है। जैन मन्दिर में इन्हीं की प्रतिमाएँ विराजमान होती हैं। यह सर्व कथन पूर्ण रूप से तीर्थंकरों के लिए समझना चाहिए। सामान्य केवलियों में आत्मा के अंत रंग के गुण समान हैं बाहरी बातों में कुछ अन्तर होता है, क्योंकि तीर्थंकर अधिक पुण्यवान होते हैं।

प्रश्नावली

१ परमेष्ठी किसे कहते हैं? और ये कितने होते हैं? नाम बताओ।
२ अरहन्त किन्हें कहते हैं? और इनमें कितने गुण होते हैं? नाम सहित बताओ।

२ अरहन्त किन्हें कहते हैं ? और इनमें कितने गुण होते हैं ? नाम सहित बताओ।

३ अतिशय से तुम क्या समझते हो ? बताओ कुल अतिशय कितने होते हैं ?

४ जब भगवान का जन्म होता है बताओ उस समय कौनसे अतिशय प्रकट होते हैं ? वज्रवृषभनाराचसंहनन का क्या तात्पर्य है ?

५ (अ) केवल ज्ञान के दस अतिशय कौनसे हैं ?
(आ) देवकृत अतिशय कितने होते है ? नाम बताओ ?

६ आठ प्रतिहार्य तथा अनतचतुष्टयों के नाम लिखो। बताओ श्री ऋषभ भगवान् और श्री वद्धमान स्वामी में एक से गुण थे या कुछ कम ज्यादा ?

७ अरहंत में कौन से अठारह दोष नहीं पाये जाते ?

पाठ १०

सिद्ध परमेष्ठी

तुम पढ़ चुके हो कि कर्म आठ हो हैं। इन्हीं कर्मों के कारण जीवों को ससार में घूमना और दुख पाना पड़ता है। जो जीव इन कर्मों में से जब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अतराय इन चार घातिया कर्मों का तपश्चरण

द्वारा नाश कर देते हैं, अरहत परमात्मा हो जाते हैं। वे ही अरहत जब शेष आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय इन चार अघातिया कर्मों का भी नाश कर देते हैं, तो वे शरीर और ससार के बन्धनों से सदैव के लिये छूट जाते हैं। और तीन लोक के शिखर पर सिद्धालय में विराजमान हो जाते हैं। उन्हें सिद्ध भगवान् या मुक्त जीव कहते हैं। इन्हीं का नाम निराकार परमात्मा है।

यादरक्खो—सिद्ध उन्हें कहते हैं जो अष्ट कर्मों का नाश करके ससार के बन्धन से सदैव के लिये मुक्त हो गये हैं, अर्थात् जो लौट कर फिर कभी ससार में नहीं आवेंगे सिद्ध भगवान् के नीचे लिखे मुख्य गुण होते हैं।

सोरठा

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघू अवगाहना।
सूक्षम वीरजवान, निराबाध, गुण सिद्ध के।

(१) क्षायिक सम्यक्त्व (२) अनन्त दर्शन (३ अनन्त ज्ञान (४) अगुरुलघुत्व (छोटे बड़े का अभाव) (५) अवगाहनत्व (जहाँ एक सिद्ध है वहाँ अन्य सिद्धों को भी जगह मिल जाती है) (६) सूक्ष्मत्व (इन्द्रियों से जाने नहीं जासकते) (७) अनन्तवीर्य (८) अव्याबाधत्व (कोई बाधा नहीं)।

१ सिद्ध किसे कहते हैं ? अरहंत में और सिद्ध में क्या अंतर है
२ बताओ दूसरे परमेष्ठी कौन हैं और वे कहाँ रहते हैं ? ...
बताओ वह वहाँ से लौट कर आ सकते हैं या नहीं ?
३ निराकार से तुम क्या समझते हो ? बताओ सिद्ध भगव...
निराकार हैं या नहीं ?
४ सिद्ध परमेष्ठी में कितने गुण होते हैं ? और कौन से
नाम बताओ । सूक्ष्मत्व और अव्याबाधत्व का अर्थ लिखो



पाठ ११

आचार्य परमेष्ठी

आचार्य उन्हें कहते हैं जो आप पाँचों आचारों का पालन करते हैं, और दूसरे मुनियों से उनका पालन कराते हैं तथा जो दीक्षा और शिक्षा देते हैं। आचार्य मुनियों के संघ के अधिपति होते हैं। उनमें नीचे लिखे हुए ३६ गुण होते हैं।

दोहा—द्वादशतप दश धर्म युत, पालें पचाचार।
षट् आवश्यक त्रिगुप्तिगुण, आचारज पद सार ॥

अर्थात् १२ तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक गुण और ३ गुप्ति यह कुल ३६ गुण होते हैं।

बारह तप

दोहा—अनशन ऊनोदर करें, व्रत संख्या रस छोर।
विविक्त शयन आसन धरें, कायक्लेश सुठोर॥
प्रायश्चित धर विनययुत, वैय्यावृत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचार कें, धरें ध्यान मन लाय॥

१–अनशन—सर्व प्रकार के भोजन का त्याग कर उपवास करना।

२–ऊनोदर—भूख से कम खाना।

३–व्रतपरिसंख्यान—भोजन के लिए जाते हुए आखड़ी लेना और किसी से न कहना। आखड़ी पूरी न हो तो उपवास करना।

४–रस परित्याग—छहों रसों का या उनमें से एक दो का त्याग करना। रस छः हैं—दूध, घी, दही, मीठा, तेल, नमक।

५–विविक्त शय्यासन—एकान्त स्थान में सोना बैठना।

६–कायक्लेश—शरीर का सुखियापन मेटने के लिए कठिन तप करना।

७–प्रायश्चित—लगे हुए दोषों का दण्ड लेना।

८–विनय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय तथा रत्नत्रय धारकों की विनय करना।

९–वैयाव्रत—रोगी को या वृद्ध मुनियों की सेवा करना।

१०–स्वाध्याय—शास्त्र पढ़ना।

११–व्युत्सर्ग—शरीर से ममत्व हटाना।

१२–ध्यान—आत्मरूप का ध्यान करना। इनमें से पहिले ६ बाह्य तप [बाहर के तप कहलाते हैं] और पीछे के ६ अन्तरङ्ग तप कहलाते हैं।

दस धर्म

दोहा—उत्तम छिमा मार्दव आर्जव, सत्य वचन चित पाग।
संजम तप त्यागी सरब, आकिंचन तिय त्याग॥

१–उत्तम क्षमा—पीड़ित किए जाने पर भी अपने में सामर्थ्य होते हुए क्रोध नहीं करना।

२–उत्तम मार्दव—बिल्कुल मान न करना।

३–उत्तम आर्जव—बिल्कुल कपट न करना।

४–उत्तम सत्य—शास्त्रानुसार सच बोलना।

५–उत्तम शौच—सन्तोष रख कर लोभ न करना, अपने अन्तःकरण को शुद्ध रखना।

६–उत्तम संयम—छह काय के जीवों की दया पालना और पांच इन्द्रियों और मन को वश में रखना।

७–उत्तम तप—बारह प्रकार का तप करना।

८–उत्तम त्याग—चार प्रकार का दान देना तथा राग द्वेष आदि का त्याग करना।

९–उत्तम आकिंचन—परिग्रह का सर्वथा त्याग करना।

१०–उत्तम ब्रह्मचर्य—स्त्री मात्र का त्याग करना।

छह आवश्यक

दोहा—समता धर वन्दन करें, नाना थुती बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्याययुत, कायोत्सर्ग लगाय।

१–समता—समस्त जीवों से समताभाव रखना तथा सामायिक करना।

२–वन्दना—हाथ जोड़ कर मस्तक से लगा जिनेन्द्र देव को नमस्कार करना।

३–स्तुति—पंच परमेष्ठी की स्तुति करना।

४–प्रतिक्रमण—लगे हुए दोषों का पश्चाताप करना।

५–स्वाध्याय—शास्त्रों का पढ़ना।

६–कायोत्सर्ग—खड़े होकर ध्यान लगाना तथा शरीर से ममता छोड़ना।

पचाचार और तीन गुप्ति

दोहा—दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पचाचार।
गोपें मन वच काय को, गिन छत्तीस गुण सार।

१ दर्शनाचार—सम्यग्दर्शन को निर्मल पालना।

२ ज्ञानाचार—सम्यग्ज्ञान की वृद्धि करना।

३ चारित्राचार—सम्यक्चारित्र को विशुद्धता से पालना।

४ तपाचार—तप की वृद्धि करना।

५ वीर्याचार—आत्मबल का प्रकट करना।

ये पाँचों आचार कहलाते हैं।

गुप्ति का अर्थ है वश में करना। गुप्ति तीन होती हैं,—

१ मनोगुप्ति—मन को वश में करना।

२ वचनगुप्ति—वचन को वश में करना।

३ कायगुप्ति—शरीर को वश में करना।

इस प्रकार सब मिल कर आचार्य के ३६ गुण हैं।

प्रश्नावली

१ आचार्य किसे कहते हैं ? आचार्य उपाध्यायों से बड़े हैं या छोटे ?

२ आचार्य में कितने गुण होते हैं और कौन-कौन से ? नाम बताओ।

३ (क) तप कितने होते हैं और बताओ इनको कौन धारण करता है।
(ख) बाह्यतप और अन्तरंग तप से तुम क्या समझते हो ? वह कौन-से हैं ? कायक्लेश और प्रायश्चित का क्या अर्थ है ?

४ (क) गुप्ति किसे कहते हैं ?
(ख) आचार और गुप्ति को कौन पालते हैं तथा ये कितने प्रकार के होते हैं ? नाम लिखो।

५ दस धर्म तथा षट् आवश्यकों के छन्द बताओ।



पाठ १२

उपाध्याय परमेष्ठी

जो मुनि स्वयं पढ़ते हैं तथा शिष्यों को पढ़ाते हैं। वे उपाध्याय कहलाते हैं। वे ११ अंग और चौदह पूर्व के पाठी होते हैं। ११ अंग तथा १४ पूर्वों का ज्ञान होना ही इनके २५ गुण हैं।

दोहा- चौदह पूरब को धरें, ग्यारह अंग सुजान।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़ें पढ़ावें ज्ञान॥

११ अंगों के नाम

प्रथमहि आचारांग गनि, दूजा सूत्रकृतांग।
ठाण अंग तीजो सुभग, चौथा समवायांग॥
व्याख्याप्रज्ञप्ति पांचमो, ज्ञातृकथा षट आन।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्त कृत दश ठान॥
अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्रविपाक विछान।
बहुरिप्रश्न व्याकरणयुत, ग्यारह अंग प्रमान॥

(१) आचारांग (२) सूत्रकृतांग (३) स्थानांग (४) समवायांग (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति (६) ज्ञातृकथांग (७) उपासकाध्ययनांग (८) अन्तःकृतदशांग (९) अनुत्तरोत्पादकदशांग (१०) प्रश्नव्याकरणांग (११) विपाकसूत्रांग, ये ग्यारह अंग हैं।

१४ पूर्व

दोहा—उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद।
अस्ति नास्ति परवाद पुनि, पंचम ज्ञानप्रवाद॥
छट्ठा कर्मप्रवाद है, सतप्रवाद पहिचान।
अष्टम आत्म प्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान॥
विद्यानुवाद पूरव दशम, पूर्वकल्याण महन्त।
प्राणवाद किरिया बहुर लोकबिन्दु है अन्त॥

(१) उत्पादपूर्व (२) अग्रायणी पूर्व (३) वीर्यानुवाद-पूर्व (४ अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व (५) ज्ञान प्रवाद पूर्व (६) कर्म प्रवाद पूर्व (७) सत्यप्रवाद पूर्व (८) आत्म प्रवाद पूर्व (९) प्रत्याख्यान पूर्व (१०) विद्यानुवाद पूर्व (११) कल्याणवाद पूर्व (१२) प्राणानुवाद पूर्व (१३) क्रियाविशाल पूर्व (१४) लोकबिंदु पूर्व।

तीर्थंकर के उपदेश को गणधर मुन के ११ अंग १४ पूर्व में या द्वादशांग में गूंथते हैं। इनके ज्ञाता उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं।

प्रश्नावली

१ उपाध्याय परमेष्ठी किन्हें कहते हैं?
२ चौथे परमेष्ठ कितने गुणों के धारक होते हैं?
३ पूर्व कितने होते हैं? इनके लिखो।
४ अंग कितने होते हैं? नाम सहित बताओ।

पाठ १३

साधु परमेष्ठी

जो मोक्ष पुरुषार्थ का साधन करते हैं, उन्हें साधु कहते हैं। उनके पास कुछ भी परिग्रह नहीं होता और न

वह कोई आरम्भ करते हैं। वे सदा ज्ञान ध्यान में लव
लीन रहते हैं।

उनके ५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इन्द्रियविज
६ आवश्यक और ७ अन्य शेष गुण, कुल २८ मूलगु
होते हैं। इन्हीं साधुओं में से योग्यतानुसार आचार्य
उपाध्याय पद होते हैं।

पंच महाव्रत

दोहा—हिंसा अनृत तस्करी, अब्रह्म परिग्रह पाप
मन वच तन तें त्यागवो, पंच महाव्रत थाप

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पां
पापों का मन वचन, काय से सर्वथा त्याग करने
नाम ही पंचमहाव्रत है।

१ अहिंसा महाव्रत—मन, वचन, काय से सर्व
हिंसा का त्याग करना।

२ सत्य महाव्रत—मन, वचन, काय से सर्वथा झू
का त्याग करना।

३ अचौर्य महाव्रत—मन, वचन, काय से सर्व
चोरी का त्याग करना।

४ ब्रह्मचर्य महाव्रत—मन, वचन, काय से सर्व
मैथुन का त्याग करना।

परिग्रह त्याग महाव्रत—२४ प्रकार के परिग्रह का मन वचन, काय से सर्वथा त्याग करना।

यह २४ प्रकार का परिग्रह इस भाँति जानना चाहिये।

१४ अन्तरङ्ग परिग्रह—मिथ्या दर्शन,, क्रोध, मान माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपु सकवेद।

१० वाह्य परिग्रह—

क्षेत्र, मकान, धन, (गाय भैंस आदि) धान्य, हिरण्य (चाँदी) (सोना), दासी, दास, कपड़े वर्तन।

पच समिति

दोहा—ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपणआदान।
प्रतिष्ठापना युत क्रिया, पाँचों समिति विधान॥

१ ईर्या समिति—आलस्य रहित चार हाथ आगे देखकर दिन में (प्राशुक) भूमि पर चलना।

२ भाषा समिति—हित मित प्रिय वचन बोलना।

३ एषणा समिति—दिन में एक बार निर्दोष शुद्ध आहार लेना।

४ आदाननिक्षेपणण समिति—अपने पास के शास्त्र, पोछी, कमण्डल आदि को भूमि देखकर सावधानी से धरना उठाना।

५ प्रतिष्ठापन समिति—जीव जन्तु रहित
(प्राशुक) भूमि देखकर मलमूत्रादि डालना।
ये पाँच समिति हैं।

दोहा—सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत का रो
पट आवस मजन तजन, शयन भूमिका शो
वस्त्रत्याग कचलुञ्च अरु, लघुभोजन इक
दाँतन मुख म ना करें, ठाड़े लेहिं अहार

१–स्पर्शन, २–रसना, ३–घ्राण, ४ चक्षु, ५–श्रों इन
इन्द्रियों को वश में करना। इनके इष्ट अनिष्ट विष
राग द्वेष नहीं करना यह इन्द्रिय विजय कहलात

६ आवश्यक—समता, वन्दना, स्तुति, प्रति
स्वाध्याय और कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक कहला
यह तुम पढ़ चुके हो। इनका पालन साधु भी करत

७ शेष गुण यह हैं—

१—स्नान का त्याग।
२ स्वच्छ शुद्ध भूमि पर सोना।
३—वस्त्र त्याग करना।
४—बालों का लोच करना।
५—दिन में एक बार थोड़ा भोजन करना।

६—दन्तवन नहीं करना।
७—खड़े होकर आहार लेना।

इस प्रकार पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रिय विजय, छः आवश्यक और सात शेष गुण मिला कर साधुओं के २८ मूल गुण होते हैं।

इन्हीं मूल गुणों का पालन करना आचार्य और उपाध्याय के लिये भी जरूरी है।

प्रश्नावली

१ साधु किन्हें कहते हैं? साधु और मुनि में क्या अन्तर है?
२ साधु परमेष्ठी में कितने मूल गुण होते हैं? जुदा २ गिनाओ?
३ महाव्रतों और अणुव्रतों में क्या भेद है और यह भी बताओ कि महाव्रत कौन पालते हैं और अणुव्रत कौन?
४ परिग्रह कितने प्रकार का होता है? नाम लिखो!
५ समिति, महाव्रत शेष गुण ये कितने होते हैं? नाम लिखो।
६ साधु, आचार्य, उपाध्याय इनको क्रम से लिखकर बताओ कि कौन सब से बड़े हैं कौन छोटे?

पाठ १४

गुरु स्तवन

ते गुरु मेरे उर बसो, तारन तरन जहाज।
आप तिरें पर तारहीं, ऐसे श्री मुनिराज॥ ते गुरु। टेक

मोह महारिपु जीत के, छोड़ दियो घर बार।
होय दिगम्बर वन बसें, आतम शुद्ध विचार॥ १ ॥ ते०
रोग उरग वपुबिल गिन्यो, भोग भुजग समान।
कदली तरु ससार है छांड़ यो सब यह जान॥ २ ॥ ते०
रत्न त्रय निधि उर धरें, अरु निर्ग्रंथ त्रिकाल।
जीतें काम ग्वबीस को स्वामी परम दयाल॥ ३ ॥ ते०
धर्म धरैं दश लक्षणी, भावें भावना सार।
सहैं परिषह बीस द्वें, चारित्र रत्न भंडार॥ ४ ॥ ते०
जेठ तपै रवि आकरो, सूखे सर वर नीर।
शैल शिखर मुनि तप तपें दाहें नगन शरीर॥ ५ ॥ ते०
पावस रयन डरावनी, बरसे जल धर धार।
तरु तले निवसैं साहसी, चाले झंझा बयार॥ ६ ॥ ते०
शीत पड़े रवि मद गले, दाहे सब वन राय।
ताल तरगनि तट विषे, ठाढ़े ध्यान लगाय॥ ७ ॥ ते०
इस विधि दुद्धर तप तपैं तीनों काल मझार।
लागें सहज स्वरूप में, तन से ममता टार॥ ८ ॥ ते०
रङ्ग महल में सोवते, कोमल सेज बिछाय।
ते सोंनें निशि भूमि म, पोढ़े सवर काय॥ ९ ॥ ते०
गज चढ़ चलते गर्व से, सेना सज चतुरङ्ग।
निरख निरख पग वे धरें, पालें करुण अग॥ १० ॥ ते०

पूण्य मोग न चितवें आगम वांछा नाहिं।
चहु गति के दुख से डरें, सुरति लगी शिवमाहिं॥ ११ ॥ ते०
ये गुरु चरण जहाँ धरें, जग में तीरथ होय।
सो रज मम मस्तक चढो, 'भूधर' माँगे सोय॥ १२॥ ते०

प्रश्नावली

१ गुरु स्तवन से तुम क्या समझते हो? बताओ इसके बनाने वाले कौन हैं?
२ वास्तविक गुरु कौन हैं? और उनमें क्या क्या विशेषतायें होनी परमावश्यक हैं?
३ परिषह कितनी होती हैं और इनको कौन और किस लिये सहते हैं?
४ संसार-सागर से तारने के लिये गुरु किसके समान होते हैं?
५ दशलक्षण धर्म के नाम बताओ?
६ बारह भावनाओं के नाम बताओ?
७ रत्नत्रय किसे कहते हैं?

पाठ १५

गृहस्थियों के दैनिक षट्कर्म

गृहस्थ लोग पाप क्रियाओं का सर्वथा त्याग नहीं कर सकते। गृहस्थ में रहते हुये खाने पीने, धन कमाने,

मकान बनाने, विवाह आदि करने के लिये अनेक प्रकार के आरम्भ करने पड़ते हैं, जिनको करते हुए भी हिंसादि के दोष लग ही जाते हैं। इन्हीं के साथ दोषों को दूर करने, पुण्य बन्ध करने तथा अपना आत्मोन्नति करने के लिये शास्त्रों में गृहस्थ के छह दैनिक कर्तव्य बताये हैं

"देवपूजा गुरूपास्ति, स्वाध्याय संयमस्तपः ।

दानं चैव गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने ॥"

अर्थात नित्य प्रति जिनेन्द्र देव की पूजा करना, गुरु की भक्ति करना, स्वाध्याय करना, संयम का पालन करना, तप का अभ्यास करना और दान को देना, ये गृहस्थ के छह दैनिक कर्तव्य हैं।

(१) -देवपूजा-श्री अरहन्त तथा सिद्ध भगवान् का पूजन करना। यदि अरहंत भगवान् साक्षात् मिलें तो उनकी सेवा में जाकर अष्ट द्रव्य से भक्ति सहित पूजन करना चाहिये अन्यथा उनका वैसा ही ध्यानाकार शान्तिमय वीतराग प्रतिमा को विराजमान करके उसके द्वारा अरहंत भगवान् का पूजन करना चाहिये। हमारी आत्मा पर जैसा प्रभाव साक्षात् अरहंत के दर्शन व पूजन से पड़ता है वैसा ही प्रभाव उनकी ध्यानमय वीतराग प्रतिष्ठि

प्रतिमा के दर्शन व पूजन से पड़ता है। प्रगट देखा जाता है कि जैसे चित्र देखने में आते हैं वैसे ही भाव देखने वाले के चित्त में अवश्य पैदा होते हैं। मन्दिर में भगवान् की वीतराग शान्तिमय प्रतिमा के देखने से हृदय आप ही आप वैराग्य भाव से भर जाता है और उनके निर्मल गुण स्मरण हो जाते हैं। उनसे भाव शुद्ध होते हैं। इसलिये गृहस्थों को चाहिये कि वे नित्यप्रति अष्ट द्रव्य से या किसी एक द्रव्य से भगवान का पूजन करें। प्रतिमा का स्थापन मात्र भावों को बदलने के लिये है, प्रतिमा से कुछ माँगने की न जरूरत है, न प्रतिमा इसलिये स्थापित ही की जाती है।

देव पूजा से पापों का क्षय और पुण्य का बन्ध होता है तथा मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। दर्शन तो प्रत्येक बालक-बालिका, स्त्री पुरुष को नित्य करना चाहिये। 'पूजन यदि नित्य न हो सके तो कभी कभी अवश्य करना चाहिये। जहाँ प्रतिमा या मन्दिर का समागम हो वहाँ परोक्ष ध्यान करके स्तुति पढ़ लेना चाहिये, तथा एक दो जाप और जप करके भोजन करना चाहिये।

२. गुरु भक्ति—गुरु शब्द का अर्थ यहां सच्चे धर्मगुरु अर्थात् मुनि महाराज से समझना चाहिये, निर्ग्रन्थ

गुरु की सेवा पूजा तथा संगति करना 'गुरुभक्ति' कहलाती है। गुरु साक्षात् उपकार करने वाले होते हैं, वे अपने उपदेश द्वारा गृहस्थों को सदा धर्म कार्य की प्ररणा किया करते हैं। गुरु तारण तरण जहाज हैं। आप संसार रूपी समुद्र से पार होते हैं और दूसरे जीवोंको भी पार उतारते हैं। इसलिये गृहस्थों को सदा भक्ति पूर्वक गुरु उपासना तथा सेवा करनी चाहिये। यदि अपने स्थान में गुरु महाराज न हों तो उनको स्मरण करके मन पवित्र करना चाहिये। तथा धर्म के प्रचारक ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि हों तो उनकी सेवा सगति करके धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

३ स्वाध्याय—तत्व बोधक जैन शास्त्रों को विनय पूर्वक भक्ति सहित समझ कर पढ़ और दूसरों को सुनना चाहिय-यदि पढ़ना न आवे तो सुनना, व धर्म चर्चा करनी चाहिये। जिस जिस तरह हो सके ज्ञान को बढ़ाना चाहिये। स्वाध्याय एक प्रकार का तप है। इससे बुद्धि का विकास होता है। परिणाम उज्ज्वल होते हैं अनेक गुणों की प्राप्ति होती है।

४ संयम—पापों से बचने के लिये अपनी क्रियाओं

का नियम बाँधना चाहिये। पाँचों इन्द्रियों और मन को वश में करने के लिये नित्य सवेरे ही २४ घण्टे के लिये भोग उपभोग के पदार्थों को अपने काम के योग्य रखके शेष का त्याग करना चाहिये, जैसे आज हम मीठा भोजन नहीं खायेंगे। सांसारिक गीत नहीं सुनेंगे या रेडियो नहीं सुनेंगे। वस्त्र इतने काम में लेंगे इत्यादि। तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस इन छः प्रकार के जीवों की रक्षा का भाव रखना और व्यर्थ उनको कष्ट न देना चाहिये। इसलिये गृहस्थों के लिये जरूरी है की वह नित्य प्रति सयम पालन का अभ्यास किया करें। सयम एक दुर्लभ वस्तु है। सयम का पालन केवल मनुष्य गति में ही हो सकता है। सयम के बिना मनुष्य जन्म निष्फल होता है। विद्यार्थियों को चाहिये वह भावना भावें कि उनके जीवन की एक घड़ी भी सयम के बिना न जावे। पालने के लिये उचित है, कि हम बुरी आदतों को छोड़ें। अपना खान पान पहनाव आदि सादा रक्खें। फैशन के दास न बनें। चाय, सोडा, तम्बाकू, बीड़ी सुरट शराब आदि नशे की चीजें, मसालेदार चाट, खोमचे और बाज़ार की बनी हुई अशुद्ध मिठाई आदि का सेवन न करें। भावों को बिगाड़ने वाले नाटक, सिनेमा, नाच स्वांग,

तमाशे न देखें तथा विकार पैदा करने वाले उपन्यास तथा कहानियां न पढ़ें।

५. तप—से मतलब नित्य सवेरे व शाम एकान्त में बैठ कर सामायिक करने से है। आत्मध्यान की अग्नि में आत्मा को तपाना तप है। इससे कर्मों का नाश होता है। सच्ची शान्ति मिलती है। आत्म सुख का स्वाद आता है। आत्म बल की वृद्धि होती है। इसलिये सवेर शाम सामायिक अवश्य ही करना चाहिये।

६ दान—अपने और पर के उपकार के लिए, फल की इच्छा के बिना, प्रेम भाव से, धनादि का तथा स्वार्थ का त्याग करना दान कहलाता है। जो दान मुनियों, व्रती श्रावकों तथा अव्रती सम्यक्त्वी श्रेष्ठ पुरुषों को भक्ति सहित दिया जाता है, पात्रदान कहलाता है। और जो दान दीन दुखी, भूखे, अपाहज, विधवा, अनाथों को करुणाभाव से दिया जाता है, वह करुणादान कहलाता है।

दान चार प्रकार का है—१—आहार दान, २—औषधि-दान, ३—ज्ञानदान, ४—अभयदान।

(क) अहार दान—मुनी, त्यागी, श्रावक, ब्रह्मचारी

तथा लगड़े, लूले, भूखे, अनाथ विधवाओं को भोजन देना आहार दान है।

(ख) औषधि दान रोगी स्त्री पुरुषों को औषधि देना उनकी सेवा टहल करना, औषधालय खोलना औषधि दान है।

(ग) ज्ञान दान—पुस्तकें बाँटना, पाठशालायें खोलना, व्याख्यान देकर तथा शास्त्र सुनाकर धर्म और कर्तव्य का ज्ञान कराना, असमर्थ विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देना, किसी को बिना कुछ लिए परोपकार बुद्धि से पढ़ा देना ज्ञान दान है।

(घ)अभय दान--जीवों की रक्षा करना, धर्म साधन के लिये स्थान बनवाना, चौकी पहरा लगवा देना। धर्मात्मा पुरुषों को सङ्कट से निकालना, दीन दुखी मनुष्य, पशु पक्षी भयभीत हों, वा तन मन धन से प्राण बचाकर उनका भय दूर करना अभय दान है। मानवों व पशुओं के भय निवारण के लिये धर्मशाला व पशुशाला बनवाना अभय दान है।

ऊपर लिखे चारों प्रकार के दानों में से कुछ न कुछ

त्य प्रति करना गृहस्थों का नित्य दैनिक दान कर्म है।
रे भोजन करने से पहले रोटी आधी रोटी दान के
ये निकाले बिना भोजन न करना चाहिये। गृहस्थियों
उचित है कि जो पैदा करें उसका चौथाई भाग, या
वा या आठवाँ या कम से कम दसवाँ भाग दान
धर्म की उन्नति के लिये निकालें, अपना जीवन सादगी
बितावें, विवाह आदि में कम खर्च करें परोपकार में
धिक धन लगावें।

प्रश्नावली

गृहस्थियों के दैनिक कर्तव्य कितने हैं? इनका पालन किस लिये करते हैं?

दैनिक कर्म कितने हैं? नाम बताओ। बताओ इनका नाम "दैनिक कर्म" क्यों रक्खा गया?

देव पूजा से क्या अभिप्राय है? यदि साक्षात् भगवान न मिलें तो उस अवस्था में क्या करना चाहिये? देव पूजा से क्या लाभ हैं?

गुरु भक्ति व स्वाध्याय से तुम क्या समझते हो? बताओ स्वाध्याय करने से क्या लाभ है?

संयम किसे कहते हैं? और संयम रखना क्यों आवश्यक है? संक्षेप में बताओ कि कौन से कर्मों का त्याग संयम माना जा सकता है।

बताओ गृहस्थी के दैनिक कर्मों में तप का क्या अर्थ है?

७ दान किसे कहते हैं और ये कितने प्रकार का है ?

८ धर्मशाला बनवाना, पाठशाला खुलवाना तथा औषधालय खुलवाना और भिक्षुकों को भोजन देना, ये कौन से दान हैं ?

पाठ १६

श्रावक के पाँच अणुव्रत (अ)

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों का बुद्धि पूर्वक त्याग करना व्रत कहलाता है।

व्रत के दो भेद हैं। महाव्रत और अणुव्रत। मन वचन काय से पाँचों पापों का बुद्धिपूर्वक संपूर्ण त्याग करना महाव्रत कहलाता है इनका पालन मुनिराज ही कर सक्ते हैं।

हिंसादि पाँच पापों का मोटे रूप से एक देश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है। अणुव्रत पाँच हैं,—

(१) अहिंसा अणुव्रत (२) सत्याणुव्रत (३) अचौर्याणुव्रत (४) ब्रह्मचर्याणुव्रत (५) परिग्रहपरिमाणअणुव्रत।

(क) अहिंसाणुव्रत—त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करना अणुव्रत कहलाता है।

दूसरे भाग में तुम पढ़चुके हो कि प्रमाद के वश होकर अपने या दूसरे के घात करने या दिल दुखाने को हिंसा कहते हैं यह हिंसा चार प्रकार की होती है।

(१) सकल्पी हिंसा—उसे कहते हैं जो इरादे से की जाय, अर्थात् माँस भक्षण के लिए, धर्म के नाम पर बलि चढ़ाने के लिए शिकार वगैरह का शौक तथा फैशन को पूरा करने के लिए जो जीवों का वध किया जाता है वह सकल्पी हिंसा है।

(२) उद्यमी हिंसा—खेती व्यापार करने कल कारखाने चलाने आदि रोजगार करने मे जो हिंसा होती है उसको उद्यमी हिंसा कहते हैं।

(३) आरम्भी हिंसा—रसोई बनाना, अन्न को कूटना तथा बुहारी देना, मकान आदि बनाना, उनको लीपने पोतने आदि में जो हिंसा होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं।

(४) विरोधी हिंसा—शत्रु से अपने जान माल तथा अपने देश और धर्म की रक्षा करने के लिए युद्ध आदि करने में जो हिंसा होती है उसे विरोधी हिंसा कहते हैं।

इन चारों हिंसाओं म से श्रावक केवल सकल्पी

हिंसा का त्याग कर सकता है, स्थावर जीवों की भी व्यर्थ हिंसा नहीं करता है। यद्यपि बाकी तीन हिंसाओं का सर्वथा त्याग श्रावक गृहस्थी में रहते हुए नहीं कर सकता तो भी उसको सब कार्यों के करने में यत्न और नीति से ही व्यवहार करना चाहिए। इस व्रत का धारी श्रावक कषाय से किसी भी प्राणी को बंधन में नहीं डालता। लाठी चाबुक आदि से नहीं मारता। किसी जीव के नाक, कान पूंछ आदि अंगोपांग का छेदन नहीं करता है। किसी जीव पर उसकी शक्ति से अधिक बोझा नहीं लादता। अपने आधीन पशुओं को भूखा प्यासा नहीं रखता है। यदि वह ऐसा करता है तो उसके व्रत में दोष लगता है।

(ख) सत्याणु व्रत—स्थूल झूठ बोलनेका त्याग करना सत्याणु व्रत कहलाता है। इस व्रत का पालन करने वाला स्थूल (मोटा) झूठ न तो आप बोलता है न दूसरों से बुलवाता है और ऐसा सच भी नहीं बोलता कि जिसके बोलने से किसी जीव का अथवा धर्म का घात होता है। इस व्रत का धारी झूठा उपदेश, नहीं देता है। दूसरे के दोष प्रगट नहीं करता है विश्वासघात नहीं करता है। झूठी गवाही नहीं देता है। झूठे लेख

नहीं बनाता है, जाली हस्ताक्षर मोहर वगैरह नहीं च

(ग) अचौर्याणु व्रत—प्रमाद के वश होकर दूस बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने का त्याग अचौर्याणुव्रत है। इस व्रत का धारी किसी की गिरी भूली या रक्खी हुई वस्तु को न तो आप लेता है न उठाकर दूसरों को देता है।

इस व्रत का धारी दूसरों को चोरी का उपाय बताता। चोरी का माल नहीं लेता। राजा के महसूल की (जैसे महसूल चुंगी रेलवे टिकट आदि) चोरी करता। बढ़िया चीजों में घटिया मिलाकर बढ़िय मोल में नहीं बेचता। जैसे दूध में पानी मिलाकर, घ चर्बी मिलाकर नहीं बेचता। नापने तोलने के गज तराजू वगैरह हीनाधिक (कम या ज्यादा) नहीं रखत यदि ऐसा करता है तो उसका व्रत दूषित हो जाता

(घ) ब्रह्मचर्याणु व्रत—अपनी विवाहिता स्त्री सिवाय अन्य स्त्रियों से काम सेवन का त्याग करना ब्र चर्याणुव्रत है। इस व्रत का धारी अपनी स्त्री को छोड़ बाकी स्त्रियों को अपनी पुत्री और बहन के समान समझ है। कभी [illegible]

अपने आधीन कुटम्बीजनों के सिवाय दूसरों के रिश्ते नाते नहीं करता। वेश्या तथा व्यभिचारिणी (बदचलन) स्त्रियों की संगति नहीं रता और न उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखता है। काम के नियत अंगों को छोड़कर और अंगों में कुचेष्टायें नहीं करता। अपनी स्त्री से भी काम सेवन की अधिक लालसा नहीं रखता है। यदि वह ऐसा करता है तो उसका व्रत मलीन होजाता है।

नोटः—स्त्री को विवाहित पुरुष में ही सतोष धारण करना चाहिये। अपने पति के सिवाय अन्य पुरुषों को पुत्र भाई तथा पिता के समान समझना चाहिये। ऐसे भाव करने से ही पतिव्रत धर्म रूप ब्रह्मचर्य का पालन होता है। स्त्रियों को भी उन सब कारणों से बचना चाहिये जो उनके शीलव्रत को दूषित करने वाले हों।

(ङ) परिग्रह परिमाण अणुव्रत—अपनी इच्छानुसार खेत मकान, रुपया पैसा, सोना चाँदी, गौ, बैल, घोड़ा, अनाज, दासी दास, वस्त्र, बर्तन वगैरह वस्तुओं का इस प्रकार परिमाण कर लेना कि मैं जन्म भर के लिये इतना रखूंगा, बाकी सबका त्याग कर देना परिग्रह परिमाण अणुव्रत है। इस व्रत का धारी अपने किए हुए परिमाण-

का उल्लंघन नहीं करता। किन्तु जितना परिग्रह उसने रखा है, उसमें ही सतुष्ट रह अधिक तृष्णा नहीं करता है। जब प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाती है, तो सतोष से अपना जीवन धर्म साधन व परोपकार में बिताता है।

प्रश्नावली

१ व्रत किसे कहते हैं और व्रत के कितने भेद हैं?
२ अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं? बताओ हिंसा कितने प्रकार की है? श्रावक सभी हिंसाओं का त्याग कर सकता है?
३ सत्याणुव्रत तथा अचौर्याणुव्रत का धारी कौन २ से कामों को नहीं करेगा? एक चोर की प्राण रक्षा के लिए झूठी गवाही देना अच्छा है या बुरा?
४ ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते हैं? ब्रह्मचर्यव्रत के धारी के लिए कौन कार्य त्याज्य है? बताओ इस व्रत का धारी वेश्या का नाच देखेगा या नहीं?
५ परिग्रह परिमाण का क्या अभिप्राय है?



पाठ १७

श्रावक के व्रत (ब) ३ गुणव्रत

गुणव्रत उन्हें कहते हैं जो अणुव्रतों का उपकार करें और अणुव्रतों का मूल्य गुणन रूप बढ़ा देवें। गुणव्रत तीन होते हैं। १–दिग्व्रत २– देशव्रत ३–अनर्थदंडव्रत।

(क) दिग्वत—लोभ के आरंभ को कम करने के लिये जन्म भर के लिये दसों दिशाओं में आने जाने की हद बांध लेना दिग्वृत कहलाता है। इस वृत का धारी इस प्रकार नियम करता है कि मैं जन्म-पर्यन्त अमुक दिशा में, अमुक नदी पर्वत नगर से आगे नहीं जाऊँगा, जैसे किसी मनुष्य ने पूर्व में कलकत्ता, पश्चिम में सिन्धु नदी उत्तर में हिमालय पर्वत और दक्षिण में कन्याकुमारी से आगे नहीं जाने का नियम ले लिया हो, यह नियम दिग्वृत कहलाता है।

इस वृत के धारी को चाहिये कि अपने किये नियम की मर्यादा को भली भाँति याद रक्खें, और लोभादिक के वश में होकर उसमें कोई घटा बढ़ी न करे।

[ख] देशव्रत—घड़ी, घण्टा, दिन, पक्ष, महीना, वगैरह नियत समय तक दिग्वृत में की हुई मर्यादा और भी घटा लेना देशवृत है। जैसे दिग्वृत में किसी ने यह नियम किया कि जन्म भर वह पूर्व दिशा में कलकत्ते से आगे नहीं जावेगा, अब नियम करता है कि मैं चौमासे में अपने शहर से बाहर कहीं नहीं जाऊँगा। वह यह नियम और फिर किसी दिन कर लेवे कि आज मैं मंदिर

में ही रहूँगा मंदिर से बाहर कहीं नहीं जाऊँगा, तो यह उसका देशव्रत समझना चाहिए। इस व्रत का धारी मर्यादा से बाहर क्षेत्र में न आप जाता है न किसी दूसरे को भेजता है, न वहाँ से कोई चीज वगैरह मंगवाता है, न भेजता है, न कोई पत्र व्यवहार करता है। धर्म कार्य के लिये मनाई नहीं है।

याद रक्खो दिग्व्रत जीवन पर्यंत होता है और देश-व्रत कुछ नियत समय के लिये होता है।

(ग) अनर्थ दंडव्रत—बिना प्रयोजन ही जिन कार्यों में पाप का आरंभ हो, उन उन कार्यों का त्याग करना अनर्थ दंडव्रत है।

इस व्रत का धारी पाँच प्रकार के अनर्थों से अपने को बचाता है.—

१—पापोप देश—बिना प्रयोजन किसी को ऐसा कोई कार्य करने का उपदेश नहीं देता जिसमें पाप हो।

२—हिंसादान—हिंसा के औजार तलवार, पिस्तौल, फावड़ा कुदाल, पींजरा, चूहेदान आदि किसी दूसरे को वध के लिये माँगे नहीं देता।

३—अपध्यान—दूसरों का बुरा नहीं चाहता है। दूसरों

के स्त्री पुत्र धन आजीवका आदि नष्ट होने की इच्छा नहीं करता है। दूसरे मनुष्यों तथा जानवरों की लड़ाई देखकर खुश नहीं होता, किसी की हार जीत में आनन्द नहीं मानता।

४–दुःश्रुति—परिणामों को बिगाड़ देने वाली कहानी किस्से, नाविल, स्वांग, तमाशे, नाटक वगैरह की किताबें नहीं पढ़ता और नहीं सुनता।

५–प्रमादचर्या—बिना प्रयोजन जल नहीं खिंडाता अग्नि नहीं जलाता, ज़मीन नहीं खोदता, वृक्ष, पत्ते, फल, फूल आदिक नहीं तोड़ता। इस व्रत के पालन करने वाले को चाहिए कि अपना ज़बान से कोई झूठ वचन न कहे शरीर से कोई कुचेष्टा न करे। व्यर्थ बकवास और फ़िज़ूल की दौड़ धूप से बचता रहे और अपनी आवश्यकता से अधिक भोग उपभोग की सामग्री इकट्ठा न करे। यदि वह ऐसा करता है तो वह अपने नियम को मलीन करता है।

प्रश्नावली

१ गुणव्रत का स्वरूप बतलाओ, गुणव्रत कितने होते हैं नाम लिखो।

२ दिग्व्रत किसे कहते हैं? दिग्व्रत तथा देशव्रत में क्या भेद है? बताओ देशव्रत का धारी अपनी मर्यादा के बाहर

किसी दूसरे मनुष्य को भिजवा कर अपना कार्य कर सकता है या नहीं ? और क्यों ?

३ अनर्थ दण्डव्रत किसे कहते हैं ? वो कौन से अनर्थ हैं जो इस व्रत के धारी के लिए त्यागने योग्य हैं ? अनर्थ दण्ड व्रती अपना चूहेदान अपने परिवार के मनुष्यों को माँगा देगा या नहीं ? उत्तर कारण सहित लिखो।

४ बताओ कोई मनुष्य बिना अणुव्रत के धारण किए गुणव्रत धारण कर सकता है या नहीं ? और गुणव्रत का धारी अणुव्रती है या नहीं ? कारण सहित उत्तर दो।



पाठ १८

श्रावक के ४ शिक्षाव्रत

शिक्षाव्रत उसे कहते हैं कि जिनके धारण करने से मुनिव्रत पालन करने की शिक्षा मिले।

शिक्षाव्रत चार हैं—१–सामायिक, २–प्रोषधोपवास, ३–भोगोपभोगपरिमाण, ४–अतिथि संविभाग।

१–सामायिक शिक्षाव्रत—समस्त पाप क्रियाओं का त्याग तथा सबसे राग द्वेष छोड़ समता भावों के

साथ नियत समय तक आत्मा ध्यान करने का नाम सामायिक है।

सामायिक करने की विधि—सामायिक करने वाले को चाहिये कि शांत, एकांत स्थान में जाकर किसी प्राशुक शिला या भूमि पर पट्टा आदि बिछाकर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके खड़ा होवे, और दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक से लगाकर तीन बार शिरोनति करना (मस्तक झुका कर नमोस्तु करना) और ॐ नमः सिद्धेभ्य ॐ नमः सिद्धेभ्यः इन मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। फिर सीधे खड़े होकर दोनों हाथ सीधे छोड़ देने चाहिये। दोनों पाँव की एड़ियों में चार अगुल का और सामने अगूठों में बारह अगुल का अन्तर रहे इसी प्रकार मस्तक को भी सीधा और नाशाग्र दृष्टि रखना चाहिये और नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप करना चाहिये। इसके बाद उसी उत्तर या पूर्व में दोनों घुटने पृथ्वी पर लगाकर और दोनो हाथ जोड़कर मस्तक से लगा कर और मस्तक भूमि में लगाकर अष्टाग नमस्कार करना चाहिए। फिर खड़े होकर काल आदि का प्रमाण कर लेना चाहिए कि मैं छः घड़ी चार घड़ी या दो घड़ी तक या अमुक समय

तक सामायिक करूंगा। उतने काल तक जो परिग्रह शरीर पर है उतना ही ग्रहण है। इत्यादि परिग्रह तथा काल क्षेत्रादि सम्बन्धी प्रतिज्ञा करनी चाहिए। पश्चात् उसी दिशा में बिल्कुल सीधे दोनों हाथ जोड़कर पहले की तरह खड़े होकर नौ या तीन बार णमोकार मन्त्र का जापकर दोनों हाथ जोड़कर तीन आवर्त्त करे अर्थात् दोनों हाथों को अंजुली बनाकर बांई ओर से दाहिनी ओर को ले जाते हुये तीन चक्कर करे और फिर उस अंजुली को मस्तक से लगा कर मस्तक को झुकाना चाहिए। इस प्रकार शेष तीन दिशाओं में भी प्रत्येक में तीन मन्त्र जपकर तीन आवर्त और एक शिरोनति करना चाहिये। इस प्रकार चारों दिशाओं में भी सब मिलाकर बारह मंत्रों का जाप बारह आवर्त्त और चार शिरोनति हो जावेंगी पश्चात् जिस दिशा में पहले खड़े होकर नमस्कार किया था, उसी दिशा में चाहे तो मूर्तिवत् स्थिर खड़े रहकर, अथवा पद्मासन या अर्द्ध पद्मासन से स्थिर बैठ कर सामायिक पाठ पढ़ें। णमोकार मन्त्र का जाप दें। भगवत् की शांतिमय प्रतिमा तथा अपने आत्म स्वरूप का विचार करे। दशलाक्षणी धर्म तथा बारह भावना का चिन्तवन करें। इस व्रतधारी

श्रावक को चाहिये कि वह सामायिक के काल में अपने मन वचन काय को इधर उधर चलायमान न होने दे। सामायिक को उत्साह के साथ करे। और सामायिक की विधि और पाठ को चित्त की चञ्चलता से भूल न जावे। सामायिक का काल समाप्त होने पर खड़े होकर पहले की तरह नौ बार णमोकार मन्त्र को जप उसी दिशा में फिर अष्टांग नमस्कार करे। सामायिक प्रतिमा का धारी प्रात दो पहर और सन्ध्याकाल में नित्यप्रति सामायिक नियम रूप से किया करता है।

नोट—अध्यापक को चाहिये कि सामायिक की विधि, आवर्त्त, शिरोनति, अष्टांगनमस्कारादि करके छात्रों को भली भाँति समझा देवें।

२–प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को समस्त आरम्भ तथा विषय कषाय और सर्व प्रकार के आहार का त्याग करके १६ पहर तक धर्म ध्यान करना प्रोषधोपवास कहलाता है। एक बार भोजन करना 'प्रोषध' कहलाता है और सर्वथा भोजन नहीं करना 'उपवास' कहलाता है। दो प्रोषधों के बीच में एक उपवास करना 'प्रोषधोपवास' है जैसे किसी पुरुष को अष्टमी का प्रोषधोपवास करना है, तो वह सप्तमी

और नवमी को एक बार भोजन करे, और अष्टमी को भोजन का सर्वथा त्याग करे। उसे चाहिए कि प्रोषधोपवास के दिन पांच पापों का, गृहस्थ के कारोबार का तथा शृङ्गार अतर, तेल, फुलेल, साबुन अञ्जन मञ्जन आदि का और ताश चौसर गञ्जफा आदि खेलने का सर्वथा त्याग करे, और १६ पहर तक अपना समय पूजन, स्वाध्याय, सामायिक तथा धर्म चर्चा में व्यतीत करे। यह विधि उत्तम प्रोषधोपवास की है। मध्यम प्रोषधोपवास १२ पहर का और जघन्य ८ पहर का होता है। इस व्रत के धारी श्रावक को चाहिये कि वे सब क्रियायें यत्नाचार के साथ करें और उपवास सम्बन्धी उपयोगी बातों को न भूलें। यह भी ध्यान रहे कि उपवास को बेकार समझ कर न करे हर्ष और आनन्द के साथ करे।

३—भोगोपभोग परिमाणव्रत—भोजन वस्त्रादि भोगोपभोग की वस्तुओं की मर्यादा करके बाकी सब का त्याग करना भोगोपभोग परिमाणव्रत है। जो वस्तुयें एक बार ही भोगने आवें उन्हें भोग कहते हैं जैसे रोटी, पानी, दूध, मिठाई आदि। और जो चीजें बारबार

भोगने में आवें वह उपभोग कहलाती है। जैसे वस्त्र, चारपाई, मकान, सवारी आदि। जो वस्तुयें अभक्ष्य हैं अर्थात् सेवन करने योग्य नहीं हैं उनका जीवन पर्यन्त त्याग करना चाहिए, और जो पदार्थ भक्ष्य हैं अर्थात् सेवन करने योग्य हैं उनका भी त्याग घड़ी, घंटा दिन, महीना, वर्ष वगैरह की मर्यादा पूर्वक करना चाहिए।

जन्म पर्यन्त त्याग को "यम" कहते हैं और थोड़े समय की मर्यादा को लिये हुए त्याग करना 'नियम' कहलाता है। इस व्रत के धारीको चाहिए कि नित्य प्रति सवेरे उठते ही यह इस प्रकार का नियम कर लेवे कि आज मैं भोगपभोग की वस्तुए इतनी रखूँगा और उनका इतनी बार और इस प्रकार सेवन करूँगा।

इस व्रत का धारी विषयों को अच्छा नहीं समझता, पहले भोगे हुए भोगों को इच्छा रूप याद नहीं करता। आगामी भोगों की इच्छा नहीं करता। वर्तमान भोगों में भी अति लालसा नहीं रखता है। इस व्रत के धारी को निम्न लिखित १७ नियम विचारने चाहिए—

(१) भोजन के बार करूँगा।

(२) छः रसों में से कौनसा छोड़ा।

(३) पान—भोजन के सिवाय पानी कितनी बा
लूँगा।

(४) कुमकुमादि विलेपन—आज तेल अतर फुलेल
आदि लगाऊँगा या नहीं, यदि लगाऊँगा तो कौन
और कितनी बार।

(५) पुष्प-फूल सूँघूँगा या नहीं।

(६) ताम्बूल पान खाऊँगा या नहीं, यदि खाऊँग
तो कितने टुकड़े और कै बार।

(७) गाना बजाना-गाना सुनूँगा या नहीं।

(८) नृत्य करूँगा व देखूँगा या नहीं।

(९) ब्रह्मचर्य पालूँगा या नहीं।

(१०) स्नान-स्नान कै बार करूँगा।

(११) वस्त्र कपड़े कितने काम में लूँगा।

(१२) आभरण-जेवर कौन २ से पहनूँगा।

(१३) आसन-बैठने के आसन कौन २ से रखूँगा

(१४) शय्या-सोने के आसन कौन २ से रखूँगा

(१५) वाहन-सवारी कौन २ रखूँगा? या नहीं।

(१६) सचित्त वस्तु-हरी आज कौन कौन खाऊँगा

(१७) वस्तु संख्या-कितनी सब वस्तुयें खाऊँगा या छोड़ूँगा

४—अतिथि संविभागव्रत - फल की इच्छा के बिना

भक्ति और आदर के साथ धर्म बुद्धि से मुनि, त्यागी तथा अन्य धर्मात्मा पुरुषों को आहार, औषधि, ज्ञान और अभय चार प्रकार का दान देना अतिथि सविभाग व्रत कहलाता है। जो भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं, ऐसे साधुओं को अतिथि कहते हैं। अपने कुटुम्ब के लिये बनाए हुए भोजन में से भाग करके देना सविभाग है।

यदि मुनि त्यागी आदि दान के पात्र न मिलें तो किसी भी सहधर्मी भाई को आदर पूर्वक दान देवें अथवा करुणा बुद्धि से दीन दुखी अपाहज भिखारियों को भोजन वस्त्र औषधि आदि यथा शक्ति दान देवें। श्रावकों को उचित है कि भोजन करने से पहले कुछ न कुछ दान अवश्य ही करें। यदि और कोई दान न बन सके तो अपने भोजन में से कम से कम एक दो रोटी निकालकर दुखित भूखे मनुष्यों को तथा पशुओं को दे दें। किसी का आदर सत्कार विनय करना, योग्य स्थान देना, कुशल पूछना, मीठे वचन बोलना एक प्रकार का बड़ा दान है। दान नाम त्याग का भी है। खोटे भाव, परनिन्दा, चुगली, विकथा, तथा कषायों और अन्याय के धन का त्याग

करना भी महादान है बड़ के बीज की तरह भक्ति सहित पात्र को दिया हुआ थोड़ा भी दान महान फल को देता है, दानी को इस लोक में यश और परलोक में परम सुख की प्राप्ति होती है। दानी के शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। इस व्रत के धारी को चाहिये कि क्रोधित होकर अनादर से दान न देवें। छल कपट तथा ईर्षा भाव के साथ दान देवे, दान देकर गर्व न करे तथा दान के फल की इच्छा न करे।

प्रश्नावली

१ शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ? और कितने होते हैं ?

२ सामायिक किस प्रकार करनी चाहिये, पूरी तरह से बताओ

३ नीचे लिखे हुओं में क्या अन्तर है ?
उपवास, प्रोषधोपवास भोग और उपभोग यम और नियम

४ भोगोप भोग परिमाणव्रत किसे कहते हैं तथा इस व्रत के धारी के लिये विचारने योग्य कम से कम १० नियम लिखो। व दश भोग और दश उपभोग वस्तुओं के नाम लिखो।

५ शिक्षाव्रत के अन्तिम भेद का लक्षण लिखकर बताओ कि तुम अतिथि से क्या समझते हो ?

६ संविभाग का क्या अभिप्राय है, और दान का क्या महत्व है ?

पाठ १६

महावीर स्तुति

धन्य तुम महावीर भगवान्

लिया पुण्य अवतार, जगत का करने को कल्याण । ध० १।

बिल बिलाट करते पशु गुन को, देख दयामय प्राण ।

परम अहिंसामय सुधर्म को डाली नींव महान ॥ध० । २॥

ऊँच-नीच के भेद-भाव का, बड़ा देख परिमाण ।

सिखलाया सबको स्वाभाविक, समतातत्व प्रधान । ध०। ३ ।

—मिला समवसृत में सुरनर-पशु, सबको सम सम्मान ।

समता और उदारता का यह कैसा सुभग विधान । ध० ४ ।

अन्धी श्रद्धा का हो जग में, देख राज्य बलवान ।

कहा 'न मानो बिना युक्ति के कोई वचन प्रमाण' । ध०५।

प्रश्नावली

१ इस कविता में किन की स्तुति की गई है ?

२ भगवान महावीर के उपदेशों को एक संक्षिप्त निबंध में लिखो

पाठ २०

भगवान पार्श्वनाथ

भगवान् महावीर चौबीस तीर्थङ्करों में से अंतिम

तीर्थंकर थे। इनके पहले तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी हुए हैं। उनका बाल जीवन सत्य धर्म का पाठ सिखाने के लिये अनुपम है।

तीर्थंकर उस महा पुरुष को कहते हैं जिसने इन्द्री और मन को जीत कर सर्वज्ञ पद पालिया हो। इस प्रकार सब ही ज्ञान के द्वारा जो भटकते हुए जीवों को संसाररूपी महासागर से पार लगाने में सहायक हो। इस प्रकार सब ही तीर्थंकर लोक का सच्चा उपकार करने वाले महान शिक्षक थे। इनमें सबसे पहले ऋषभदेव हुए उनके बाद बड़े २ लम्बे चौड़े समयों के बाद क्रमशः तेईस तीर्थंकर और हुये थे। इनमें से चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर जी की बाबत बालको! तुम पहले ही पढ़ चुके हो।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से ढाई सौ वर्ष पहले श्री पार्श्वनाथ जी निर्वाण पधारे। इनके पिता राजा विश्वसेन बनारस में राज्य करते थे इनकी माता महिपाल नगर के राजा की पुत्री थी। उनका नाम वामादेवी था। राजकुमार पार्श्वनाथ बड़े पुण्यशाली जीव थे। वह बचपन से ही महान ज्ञान की बातें करते थे। लोग उनके चातुर्य को देखकर दंग रह जाते थे।

एक रोज राजकुमार पार्श्वनाथ वन विहार के लिये

निकले। सखा साथी उनके साथ थे। घूमते फिरते वे एक पेड़ के पास से निकले, जिस पर एक सन्यासी उल्टा लटक पचाग्नि तप कर रहा था। यह उनके नाना थे। राज कुंवार उनकी मूढ़ क्रिया देख कर हँसे और साथियों से बोले देखो इस मूढ़ सन्यासी को! यह जीव हत्या करके स्वर्ग के सुखों की अभिलाषा कर रहा है, जिस लकड़ को इसने सुलगा रक्खा है, उसमें नाग नागिनी हैं, यह भी इसको पता नहीं है।

सन्यासी इस बात को सुन कर आग बबूला हो गया और बोला 'हाँ हाँ तू बड़ा ज्ञानी है। छोटी मुंह बड़ी बातें कहते तुझे डर भी नहीं लगता, तिस पर भी तेरा नाना और सन्यासी। इस मेरी तपस्या को तू हत्या का काम बताता है'।

राज कुमार पार्श्व नाथ ने सन्यासी की इन बातों का बुरा न माना बल्कि उन्होंने उत्तर में कहा साधु होकर क्रोध क्यों करते हो? बुद्धि उम्र के साथ नहीं बिकी है। ज्ञान बिना कोई भी करनी काम की नहीं। तुम्हें अपनी तपस्या का बड़ा घमंड है तो जरा इस लकड़को फाड़ कर देखो, दो निरपराध जीवों के प्राण जावेंगे। क्या यही धर्म कर्म है? सन्यासी बोला तो कुछ नहीं पर लकड़

तीर्थंकर थे। इनके पहले तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी हुए हैं। उनका बाल जीवन सत्य धर्म का पाठ सिखाने के लिये अनुपम है।

तीर्थंकर उस महा पुरुष को कहते हैं जिसने इन्द्री और मन को जीत कर सर्वज्ञ पद पालिया हो। इस प्रकार सब ही ज्ञान के द्वारा जो भटकते हुए जीवों को संसाररूपी महासागर से पार लगाने में सहायक हो। इस प्रकार सब ही तीर्थंकर लोक का सच्चा उपकार करने वाले महान शिक्षक थे। इनमें सबसे पहले ऋषभदेव हुए उनके बाद बड़े २ लम्बे चौड़े समयों के बाद क्रमशः तेईस तीर्थंकर और हुये थे। इनमें से चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर जी की बाबत बालको! तुम पहले ही पढ़ चुके हो।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से ढाई सौ वर्ष पहले श्री पार्श्वनाथ जी निर्वाण पधारे। इनके पिता राजा विश्वसेन बनारस में राज्य करते थे इनकी माता महिपाल नगर के राजा की पुत्री थी। उनका नाम वामादेवी था। राजकुमार पार्श्वनाथ बड़े पुण्यशाली जीव थे। वह बचपन से ही महान ज्ञान की बातें करते थे। लोग उनके चातुर्य को देखकर दंग रह जाते थे।

एक रोज राजकुमार पार्श्वनाथ वन विहार के लिये

निकले। सखा साथी उनके साथ थे। घूमते फिरते वे एक पेड़ के पास से निकले, जिस पर एक सन्यासी उल्टा लटक पचाग्नि तप कर रहा था। यह उनके नाना थे। राज कुमार उनकी मूढ़ क्रिया देख कर हँसे और साथियों से बोले देखो इस मूढ़ सन्यासी को! यह जीव हत्या करके स्वर्ग के सुखों की अभिलाषा कर रहा है, जिस लक्कड़ को इसने सुलगा रक्खा है, उसमें नाग नागिनी है, यह भी इसको पता नहीं है।

सन्यासी इस बात को सुन कर आग बबूला हो गया और बोला 'हाँ हाँ तू बड़ा ज्ञानी है। छोटी मुंह बड़ी बातें कहते तुझे डर भी नहीं लगता, तिस पर भी तेरा नाना और सन्यासी। इस मेरी तपस्या को तू हत्या का काम बताता है'।

राज कुमार पार्श्व नाथ ने सन्यासी की इन बातों का बुरा न माना बल्कि उन्होंने उत्तर में कहा साधु होकर क्रोध क्यों करते हो? बुद्धि उम्र के साथ नहीं बिकी है। ज्ञान बिना कोई भी करनी काम की नहीं। तुम्हें अपनी तपस्या का बड़ा घमंड है तो जरा इस लक्कड़ को फाड़ कर देखो, दो निरपराध जीवों के प्राण जायेंगे। क्या यही धर्म कर्म है? सन्यासी बोला वो कुछ नहीं पर लक्कड़

चीरने पर जुट पड़ा। उसने देखा सचमुच उस लक्कड़के भीतर सांपों का एक जोड़ा है। वह दंग रह गया, परन्तु अपने बड़प्पन की डींग मारता ही रहा। वे युगल नाग शस्त्र से घायल हो गये, परन्तु उनके परिणामों में भगवान् पार्श्वनाथ के वचनों ने शान्ति उत्पन्न करदी वे समता भाव से मर कर धरणेंद्र पद्मावती पैदा हुए। एक बार अयोध्या से एक दूत राजा विश्वसैन की सभा मे आया। पार्श्वनाथ जी ने अयोध्या का हाल पूछा तो उसने ऋषभ आदि तीर्थंकरों का चरित्र सुनाया, सुनते ही प्रभु को ध्यान आया और वे वैराग्यवान हो गये। बिना विवाह कराये ही तीस वर्ष की अवस्था मे साधु दीक्षा ले ली और घोर तप करने लगे।

एक बार कमठ के जीव पूर्व जन्म के वैरी देव ने घोर उपद्रव किया। वृष्टि की, ओले बरसाये, सर्प लिपटाये, परतु भगवान् सुमेरू पर्वतवत् ध्यान मे स्थिर रहे। युगल नाग के जीवों मे से धरणेंद्र ने सर्प के रूप में छाया की, पद्मावती ने मस्तक पर उठा लिया उपसर्ग दूर हुआ। भगवान् को केवल ज्ञान हुआ। केवल ज्ञान होने के बाद भगवान् ने विहार करके धर्मोपदेश दिया। अनेक जीवों का उपकार किया। सौ वर्ष की आयु मे हजारीबाग जिले

के सम्मेद शिखर पर्वत से मोक्ष पधारे। इसी कारण इस पर्वत को आज कल पारसनाथ हिल (पहाड़) कहते हैं।

प्रश्नावली

१ तीर्थंकर किसे कहते हैं? बताओ भगवान् पार्श्वनाथ कौन से तीर्थंकर थे?
२ सन्यासी कौन था? और वह क्या कर रहा था? भगवान् पार्श्वनाथ को किस प्रकार ज्ञात हो गया कि लक्कड़ में नाग और नागिनी हैं?
३ भगवान् पार्श्वनाथ को वैराग्य क्यों होगया था? कमठ कौन था और उसने क्या उपद्रव किया और वह उपद्रव किस प्रकार दूर हुआ?
४ क्या कारण था, जो नाग और नागिनी घायल होकर मरने पर भी धरणेंद्र और पद्मावती हो गये?
५ भगवान् पार्श्वनाथ यहाँ से मोक्ष गये थे? और उस स्थान का क्या नाम पड़ गया था?



पाठ २१

सती अंजना सुन्दरी

सती अंजना सुन्दरी महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र व रानी हृदयवेगा की परम प्यारी पुत्री थी। बालकपन में ही वह सब विद्याओं और कलाओं में निपुण हो गई थी।

का पहाड़ टूट पड़ा । इस समय उसे परमात्मा के ध्यान के सिवाय और कोई सहारा न रहा ।

चलते चलते पवन कुमार मानसरोवर पर पहुंचे वहीं उन्होंने अपना डेरा डाल दिया । रात्री के समय जब टहल रहे थे, तो उन्होंने एक चकवी को चकवे के वियोग में रुदन करते हुए सुना, रुदन सुन कर विचारने लगे । देखो ! इस चकवी को अपने प्रिय का एक रात्रि का वियोग होने से इस समय इतना कष्ट हो रहा है तो अंजना को २२ वर्ष के वियोग से न जाने कितना कष्ट हुआ होगा । प्रेम के आंसू कुमार की आंखों से गिरने लगे, तुरन्त ही गुप्त रीति से अपने मित्र सहित उसी रात्रि को विमान में बैठ कर चुपके चुपके अंजना सुन्दरी के महल म पहुंचे, अंजना कुमार को देख कर फूली न समाई । पति की अनेक प्रकार से विनय व भक्ति करने लगी । कुमार ने अपने अपराधों की क्षमा मांगी । सारी रात महल मे अंजना सुन्दरी के साथ बिताई ।

सबेरे होते ही कुमार वहाँ से विदा होने लगे तो सुन्दरी ने कहा " जान पड़ता मुझे गर्भ रह गया है कृपा कर आप मुझे अपनी कोई निशानी दे जावें जिससे मेरा अपमान न हो सके ।" तब कुमार अपनी अंगूठी,

सुन्दरी को देकर चले गये। इधर उसके गर्भ के चिन्ह प्रति दिन प्रगट होने लगे, उसकी सासु केतुमती ने यह देख कर उसे दूषित ठहराया। अजना ने पवनकुमार की दी हुई अगूठी को दिखा कर उसके भ्रम को बहुतेरा दूर करना चाहा, परन्तु उसने एक न मानी, और अजना सुन्दरी को उसकी सखी वसतमाला सहित उसके पिता राजा महेन्द्र के यहाँ भेज दिया।

माता पिता ने भी अजना को कलंकित समझ अपने नगर में घुसने नहीं दिया। इस तरह दुखी होकर बेचारी अजना अपनी सखी वसतमाला सहित विलाप करती भयानक वन में एक पर्वत की गुफा में पहुची। वहाँ दैवयोग से उसे बड़े तपस्वी ज्ञानी मुनिराज के दर्शन हुए। अजना ने बड़ी विनय से उससे अपनी इस आपत्ति का कारण पूछा। उत्तर में मुनिराज ने कहा—"पुत्र! तूने पहले जन्म में श्री जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा को बावड़ी के जल मे फिकवा कर बड़ा अनादर किया था, इससे तूने घोर पाप का बन्धन किया। उसी के कारण अब तुझे २२ वर्ष का पति वियोग और अनेक दु ख सहन करने पड़े। अब घबरा मत, धर्म साधन कर, तेरे कष्ट का अन्त होने ही वाला है। एक बड़ा-पराक्रमी शूरवीर

और धर्मात्मा पुत्र होगा'। यह मुनिराज तो वहाँ से विहार कर गये। रात्रि के समय जब अञ्जना बसंतमाला सहित गुफा में थी कि एक भयानक सिंह गुफा के द्वार पर आया। उसे देखकर अञ्जना बड़ी भयभीत हुई। परंतु उसकी सखी बसंतमाला ने बड़े साहस और पराक्रम से सिंह का सामना करके उसे वहाँ से भगा दिया। अब अन्जना अपनी सखी सहित धर्म ध्यान पूर्वक उस गुफा में रहने लगी और श्री मुनिसुव्रत भगवान् की प्रतिमा का विराजमान करके नित्य अभिषेक व पूजन करने लगी। वहाँ ही उसने परम प्रतापी जगत् प्रसिद्ध हनुमान को जन्म दिया।

एक दिन अन्जना वन में अपने पति का याद कर फूट फूट कर रो रही थी उसी समय कारणवश हनुरुह द्वीप का राजा प्रतिसूर्य उधर से आ रहा था, अन्जना का विलाप सुन कर अपना विमान उतारा और गुफा में गया। तुरन्त ही अपनी भानजी अन्जना को पहिचान लिया और उसको हृदय से लगाया। हर प्रकार से शान्ति दे उसे अपने साथ अपने नगर को ले गया।

इधर जब पवनकुमार युद्ध में राजा वरुण को जीत कर अपने नगर आदित्यपुर में आये तो अन्जना को वहाँ न पाकर बड़ दुःखी हुए। जब पता चला कि वह अपने पिता

क यहाँ महेंद्रपुर गई है तो वे वहाँ पहुंचे। परन्तु जब वहाँ भी परम सती अञ्जना के दर्शन न हुये, तो बनों में उसकी खोज में पागलों की तरह घूमने लगे। अब तो राजा महेंद्र को भी यह हाल जानकर बड़ा दु:ख हुआ। दोनों ओर से पवनकुमार और अञ्जना की खोज में दूत भेजे गये। उनमें से एक दूत राजा प्रतिसूर्य के पास पहुंचा और कुमार का सब हाल कह सुनाया। अञ्जना यह हाल सुनकर मूर्छित हो गई। राजा प्रतिसूर्य ने उसे समझाया और आप आदित्यपुर आये। वहाँ से राजा प्रहलाद को लेकर कुमार की खोज में निकले। खोजते २ कुमार को एक भयानक वन में वृक्ष के नीचे बैठे देखा। कुमार की बड़ी शोचनीय दशा थी। कुमार को देखते ही राजा प्रहलाद के हृदय में प्रेम उमड़ आया, दौड़कर जल्दी से उसे हृदय से लगा लिया। तथा अञ्जना के मिलने का व उसके प्रतापी पुत्र होने का सब समाचार कह सुनाया। कुमार यह समाचार सुन कर प्रसन्न हुए।

वहाँ से चल कर वे सब राजा प्रतिसूर्य के यहाँ हनुरुहद्वीप आए। पवन कुमार अपनी प्राण प्यारी अञ्जना से मिले। दोनों ने अपने २ दु:ख एक दूसरे को सुना कर दिल को शान्त किया। और कुछ दिनों तक वहाँ ही

रहे। फिर यहाँ से आदित्यपुर में जाकर दोनों पति पत्नी पुत्र सहित आनन्द से समय बिताने लगे। अन्त में अंजना ने आर्यिक व्रत बड़ी तपस्या की और धर्मध्यान पूर्वक मर कर स्वर्ग प्राप्त किया।

प्यारे बालको! सती अंजना के चरित्र से हमें बड़ी शिक्षा मिलती है। देखो कर्मों की गति कैसी विचित्र है! महान् पुरुष भी कर्मों के फल से नहीं बच सकते। यह चरित्र बतलाता है कि जिन शासन की अविनय करने से बड़ा बुरा फल मिलता है। यह चरित्र मनुष्य के आलस्य को छुड़ा कर कर्मवीर बनाता है। यह चरित्र बताता है कि विपत्ति में साहसहीन न होकर धर्म पालन करना ही उचित है। यह चरित्र सिखाता है कि एक बार कार्य में सफलता प्राप्त करना वीरों का धर्म है। कर्मों का खेल, पतिव्रत की रक्षा और एक अबला के साहस और पराक्रम का सच्चा उदाहरण इस चरित्र में मिलता है।

प्रश्नावली

१ अंजना कौन थी? और किसकी पुत्री थी तथा इनका विवाह किनके साथ हुआ था?

२ पवनकुमार अंजना से क्यों अप्रसन्न हो गये थे ? तथा यह इनकी अप्रसन्नता कब तक बनी रही ?

३ पति की रुष्ठावस्था में अंजना ने क्या किया ? और उसकी क्या हालत हुई ? ।

४ पवनकुमार मानसरोवर पर क्यों गये थे ? तथा किस प्रकार उनको अपनी २२ वर्ष की छोड़ी हुई पत्नी की सुध आ गई ?

५ सास ने अंजना को क्या कलंक लगाया तथा उसे कहाँ भिजवा दिया ? बन में अंजना ने क्या २ कष्ट उठाये तथा किस प्रकार अंजना अपने मामा के घर पहुची ?

६ बताओ फिर किस प्रकार अंजना और पवनकुमार का संयोग हुआ ?

७ अंजना को अपने पति से २२ वर्ष का लम्बा वियोग क्यों सहना पड़ा था ?

८ अंजना की कहानी से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ २२

तत्व और पदार्थ

जिनके जानने से हमें अपने धर्म के पूर्ण हित का ज्ञान हो सके, हम अपने आत्मा को पवित्र कर सकें उन बातों को, या वस्तु के स्वभाव को "तत्व" कहते हैं । जिसमें तत्व पाया जावे उसी को प

कहते हैं। अत्मा [redacted] उन्नति को समझने के लिए सात तत्वों का जानना आवश्यक है। वे सात तत्व ये हैं—

(१) जीव (२) अजीव (३) आस्रव (४) बंध (५) संवर (६) निर्जरा (७) मोक्ष।

(१) जीव—उसे कहते हैं जिसमें चेतना अर्थात् देखने जानने की शक्ति पाई जावे। और प्राणों से जीवे हैं। प्राण दो प्रकार के होते हैं भावप्राण और द्रव्यप्राण

भावप्राण—ज्ञान और दर्शन सुख वीर्यादि अत्मा के गुण हैं।

द्रव्यप्राण—दश होते हैं।

५ इन्द्रियाँ—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु कर्ण।
३ बल—मनोबल, वचनबल, कायबल।
२ आयु और श्वासोच्छ्वास।

नोट—मुक्तजीवों में केवल भावप्राण, ज्ञान और दर्शन सुख वीर्य आदि ही पूर्ण रूप से पाये जाते हैं, पर संसारी जीवों में किन्हीं अंशों में ज्ञान दर्शन होते हुए द्रव्यप्राण भी पाये जाते हैं।

(२) अजीव—उसे कहते हैं जिसमें चेतना न पाई जावे। अजीव के पाँच भेद हैं—

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, (इनका स्वरूप तीसर भाग में बताया जा चुका है।)

(३) आस्रव—राग द्वेष आदि भावों के कारण पुद्गल कर्मों का खिचकर आत्मा की ओर आना आस्रव है। जैसे किसी नाव में छेद हो जाने पर पानी आने लगता है, वैसे ही आत्मा के शुभ अशुभ रूप भाव होने पर पुद्गल कर्म खिचकर आत्मा की ओर आते हैं।

आत्मा के जिन भावों से कर्मों का आना होता है उन भावों को भावास्रव कहते हैं।

(१) मिथ्यात्व, (२) अवरति (३) कषाय और (४) योग ही आस्रव के मुख्य कारण हैं।

(अ) मिथ्यात्व—राग द्वेष रहित अपनी शुद्ध परम पवित्र आत्मा के अनुभवों में श्रद्धा न करने का नाम सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व आत्मा का निज भाव है। इस सम्यक्त्व के विपरीत अर्थात् उल्टे भाव को ही मिथ्यात्व कहते हैं। इस मिथ्यात्व भाव के कारण संसारी जीवों के अनेक संकल्प विकल्प हुआ करते हैं। यह मिथ्यात्व

ही जीव के शांति स्वभाव का नाश करता है और इसी से यह जीव के कर्म बन्ध का कारण है। मिथ्यात्व पाँच प्रकार का है:—एकान्त मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व, संशय मिथ्यात्व, अज्ञान मिथ्यात्व।

(आ) अविरति—आत्मा का अपने शुद्ध चिदानंदमय स्वभाव से विमुख होकर बाहरी विषयों में लवलीन होना अविरति है। पाँचों इन्द्रियों और मन को वश में नहीं रखना और छः काय के जीवों की रक्षा न करके उनकी हिंसा करना अविरति है। ये अविरति बारह प्रकार के हैं।

(इ) कषाय—जो आत्मा को कषे अर्थात् दुःख दे, वह कषाय है। जैसे क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, शोकादि ये कषाय पच्चीस होती हैं।

अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ (चार) ४
अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ (चार) ४
प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ (चार) ४
सन्ज्वलन क्रोध मान माया लोभ (चार) ४

हास्य, रति[2], अरति[3], शोक[4], भय[5], जुगुप्सा[6], स्त्रीवेद[7], पुरुषवेद[8], नपुंसकवेद, (९ नो कषाय) इस प्रकार १६ कषाय और ९ नो कषाय मिलकर कषाय के कुल पचीस भेद होते हैं

(६)योग—मन वचन काय की क्रिया द्वारा आत्मा में हलन चलन होना योग कहलाता है। आत्मा में हलन चलन होने से ही कर्मों का आस्रव होता है। योग के मन, वचन, काय रूप मुख्य तीन भेद हैं। इसके विशेष भेद १५ होते हैं। ४ मनोयोग, ४ वचनयोग और ७ काययोग।

(१) सत्य मनोयोग (२) असत्य मनोयोग (३) उभय मनोयोग (४) अनुभय मनोयोग (५) सत्य वचनयोग (६) असत्य वचनयोग (७) उभय वचनयोग (८) अनुभय वचनयोग (९) औदारिक काययोग (१०) औदारिक मिश्र काययोग (११) वैक्रियक काययोग (१२) वैक्रियक मिश्र-काययोग (१३) आहारक काययोग (१४) आहारक मिश्र-काययोग (१५) कर्माणयोग।

नोटः—इस प्रकार ५ मिथ्यात्व, बारह अविरति पच्चीस कषाय और १५ योग, ये कुल मिलाकर आस्रव के ५७ भेद होते हैं।

(४) बन्धतत्त्व—राग द्वेष के निमित्त से आये हुए शुभ अशुभ पुद्गल कर्मों का आत्मा के साथ जल और दूध की तरह मिलकर एकमेल हो जाना बंधतत्त्व है। जैसे नाव में छेद के द्वारा पानी आकर नाव में इकट्ठा हो

जाता है, वैसे ही कर्म आकर आत्मा के साथ बध जाते हैं। बध के भी दो भेद है। भाव बन्ध और द्रव्य बन्ध। आत्मा के विकार परिणामों से कर्म बन्ध होता है, उन विकार परिणामों को भाव बन्ध कहते हैं। और उस विकार भाव से जो पुद्गल कर्म ,परमाणु आत्मा के साथ दूध और पानी की तरह एकमेक होकर मिलते हैं उसे द्रव्य बन्ध कहते हैं।

बन्ध और आस्रव साथ साथ एक ही समय होते हैं। आस्रव कारण है, बध कार्य है। इसलिये जितने आस्रव हैं वे सबही बध के कारण हैं। बध चार प्रकार का होता है—

(१) प्रकृतिबन्ध (२) प्रदेश बन्ध (३) स्थिति बन्ध (४) अनुभाग बन्ध।

(५) सवरतत्व-आस्रव का न [illegible] ना अर्थात् आते हुए कर्मों का रोक देना संवर है। जैसे जिस छेद से नाव में पानी आता है उस छेद मे डाट लगाकर पानी को आने से रोक दिया जाता है वैसे ही शुद्ध भावों के द्वारा कर्मों को रोक दिया जाता है।

सवर के भी दो भेद हैं, भावसवर, द्रव्यसवर

भाव सवर-जिन परिणामों से कर्मों का आना रुकता है वे भाव सवर कहलाते हैं, और उन्हीं के रोकने

द्गल परमाणुओं का कर्म रूप होकर आना आस्रव और
आना द्रव्य संवर है।

संवर अच्छी भावनाओं, दस धर्मों का पालन करने
और परिषह अर्थात् विघ्न ? प्रकार के २२ [illegible]
के झेलने आदि से होता है।

संवर के मुख्य कारण ? गुप्ति, १२ अनुप्रेक्षा
(भावना, ५ व्रत ५ समिति, १० धर्म, २२ परिषहजय,
और ५ चारित्र हैं)।

(च) व्रत—निश्चय में राग द्वेष [illegible] से रहित
होने का नाम व्रत है। व्यवहार में अहिंसा, सत्य, अचौर्य
ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पांच व्रत कहलाते हैं। इनका
वर्णन पहिले पढ़ चुके हो।

(छ) समिति—अपने द्वारा दूसरे जीवों को पीड़ा
न होने की इच्छा से यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करना समिति
कहलाता है।

ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और उत्सर्ग
ये पांच समिति हैं।

इनका वर्णन पहले [illegible] साधु परमेष्ठी में पढ़
चुके हो।

(ज) गुप्ति—मन, वचन और काया के व्यापार को वश करना-काबू में लाना व रोकना गुप्ती है। गुप्ती तीन होती हैं -१ मनोगुप्ति २ वचन गुप्ति और ३ काय गुप्ति

(देखो पाठ १४ आचार्य परमेष्ठी)

(झ) दशधर्म—(१) उत्तम क्षमा (२) उत्तम मार्दव (३) उत्तम आर्जव (४) उत्तम सत्य (५) उत्तम शौच (६) उत्तम संयम (७) उत्तम तप (८) उत्तम त्याग (९) उत्तम आकिंचन्य (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य, यह दस धर्म हैं।

[देखो १४ आचार्य परमेष्ठी]

(ट) अनुप्रेक्षा—बारबार विचार करने को अनुप्रेक्षा या भावना कहते हैं। ये भावनायें बारह हैं। इन्हें ही बारह भावना कहा करते हैं।

१-अनित्य २—अशरण ३—संसार ४—एकत्व ५—अन्यत्व ६—अशुचि ७—आस्रव ८—संवर ९-निर्जरा १०—लोक ११—बोधिदुर्लभ १२—धर्म

(१) अनित्य भावना—ऐसा विचार करना कि धन धान्यादि जगत् की सब वस्तुयें विनाशीक हैं इनमें से कोई भी नित्य नहीं हैं।

[२] अशरण भावना–ऐसा विचार करना कि जगत् में जीव का कोई शरण नहीं है। कोई किसी को मरने से बचाने वाला नहीं।

[३] ससार भावना–ऐसा चिन्तवन करना कि यह ससार असार है और संसार में कहीं भी सुख नहीं है।

[४]एकत्व भावना–ऐसा विचार करना कि ये जीव सदा अकेला ही है अपने कर्मों के फल को अकेला आप ही भोगता है।

[५] अन्यत्व भावना–ऐसा विचार करना कि शरीर जुदा है और मैं जुदा हूँ। जब यह शरीर ही अपना नहीं है तो फिर ससार का कोई भी पदार्थ मेरा अपना कैसे हो सकता है।

[६] अशुचि भावना—ऐसा विचारना कि यह शरीर अत्यन्त अपवित्र और घिनावना है। इससे ये ममत्व करने योग्य नहीं है।

[७] आस्रव भावना—ये विचारना कि आस्रव से यह जीव ससार में रुलता है। इसलिये जो आस्रव के कारण हैं, उनका विचार करके उनसे बचने का ही उपाय करना चाहिये।

[८] संवर भावना—ऐसा विचार करना कि संवर से ही अर्थात् आस्रव के रोकने से ही यह जीव संसार से पार हो सकता है और इसीलिये संवर के कारणों का विचार करके उनको ग्रहण करना चाहिये।

[९] निर्जरा भावना—ऐसा विचार करना कि कर्मों का एक देश दूर होना निर्जरा है इसलिये निर्जरा के कारणों को जान कर जिस जिस प्रकार बन्धे हुए कर्मों को दूर करना चाहिए।

[१०] लोक भावना—ऊर्द्ध लोक, मध्यलोक, पाताललोक इन तीन लोक के स्वरूप का चिन्तवन करना कि लोक कितना बड़ा है, उसमें क्या २ स्थान है और किस किस स्थान में क्या २ रचना है और वहाँ क्या २ होता है ऐसा विचार करना लोक भावना है। इस भावना से संसार परिभ्रमण की दशा मालूम होती है और संसार से छूटने और मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा होती है।

[११] बोधिदुर्लभ भावना—ऐसा विचार करना कि यह मनुष्य देह बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है। ऐसे अमोलक मनुष्य जन्म को पाकर वृथा ही नहीं खोना चाहिये, किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारि

रूप रत्नत्रय धर्म को पालन कर अपना जन्म सफल करना चाहिये।

[१२] धर्म भावना धर्म के स्वरूप का चिंतवन करना तथा धर्म ही इस लोक और परलोक के सुखों को देने वाला है और धर्म ही दुख से छुड़ाकर मोक्ष के श्रेष्ठ सुख का देने वाला है। ऐसा विचार करना धर्म भावना है।

[ठ] परीषहजय—मुनि महाराज कर्मों की निर्जरा और काय क्लेश करने के लिये जो परीषह अर्थात् पीड़ा समता भावों से स्वयं सहन करते हैं। उनको परीषह जय कहते हैं। परीषह बाईस हैं।

[१] क्षुधा [२] तृषा [३] शीत [४] उष्ण [५] दंश मशक [६] नग्न [७] अरति [८] स्त्री [६] चर्या [१०] आसन [११] शय्या [१२] आक्रोश [१३] वध [१४] याचन [१५] अलाभ [१६] रोग [१७] तृणस्पर्श [१८] मल [१६] सत्कार पुरस्कार [२०] प्रज्ञा [२१] अज्ञान [२२] अदर्शन।

[१] क्षुधा परीषहजय—भूख की वेदना होने पर उसके वश न होकर दुःख सह लेने को कहते हैं।

[२] तृषा परीषह जय—प्यास की तीव्र वेदना पर उसके वश न होकर दुःख सह लेने को कहते हैं।

[३] शीत परीषह जय—शीत अर्थात् जाड़े के कष्ट सहन करने को कहते हैं।

[४] उष्ण परीषह जय—उष्णता अर्थात् गर्मी के सताप सहने को कहते हैं।

[५] दंश मशक परीषह जय—डाँस, मच्छर, बिच्छू कनखजूरे आदि जीवों के काटने की वेदना को सहन करने को कहते हैं।

[६] नग्न परीषह जय—किसी प्रकार के भी वस्त्र न धारण कर नग्न रहने को न होने देने को कहते हैं।

[७] अरति परीषह जय—संसार के इष्ट अनिष्ट पदार्थों में रागद्वेष न कर समता भाव धारण करने को कहते हैं।

[८[स्त्री परीषह जय—ब्रह्मचर्य व्रत भंग करने के लिये स्त्रियों द्वारा अनेक उपद्रव किये जाने पर भी चित्त में किसी प्रकार का विकार भाव नहीं करने को कहते हैं।

[९] चर्या परिषहजय-किसी प्रकार की सवारी की इच्छा न करके मार्ग के कष्ट को न गिन कर भूमि शोधन करते हुए गमन करने को कहते हैं।

[१०] आसन परीषह जय-देर तक एक ही आसन से बैठे रहने का दुःख सहन करने को कहते हैं।

[११] शय्या परीषह जय-खुर्दरी, पथरीली, काँटों से भरी हुई भूमि में शयन करके, दुखी न होने को कहते हैं।

[१२] आक्रोश परीषह जय-दुष्ट मनुष्यों द्वारा कुवचन कहे जाने पर तथा गालियाँ दिये जाने पर भी किंचित् मात्र भी क्रोधित न हो कर उत्तम क्षमा धारण करने को कहते हैं।

[१३] वध परीषह जय-दुष्ट मनुष्यों द्वारा वध बंधनादि दुःख दिए जाने पर समता भाव धारण करने और उन दुःखों को शान्ति पूर्वक सहन करने को कहते हैं।

[१४] याचना परीषह जय-किसी से भी किसी प्रकार की भी याचना न करने (माँगने) को कहते हैं।

राज भूख प्यास लगने अथवा, रोग हो जाने पर भी न औषधादि नहीं मांगते।

1) अलभ परीषह जय–अनेक उपवासों के बाद में भोजन के लिये जाने पर भी निर्दोष आहार न मिलने पर भी क्लेशित न होने को कहते हैं।

) रोग परीषह जय–शरीर में अनेक रोग हो जाने समता भाव के साथ पीड़ा को सहन करते हुए अपने रोग दूर करने का उपाय न करने को कहते हैं।

) तृणस्पर्श परीषह जय–शरीर में शूल कांटा फाँस आदि चुभ जाने पर दुखी न होने और उनके कालने का उपाय न करने को कहते हैं।

) मल परीषह जय–शरीर में पसीना आ जाने, धूल मिट्टी लग जाने के कारण शरीर के मल हो जाने पर स्नान आदि न करके चित्त निर्मल को कहते हैं।

) सत्कार पुरस्कार परीषह जय–किसी के आदर र अथवा नियम प्रणाम वगैरह न करने पर तथा

तिरस्कार किये जाने पर हर्ष विषाद न करके समता भाव धारण करने को कहते हैं।

(२०) प्रज्ञा परीषह जय—अधिक विद्वान् अथवा चारित्रवान हो जाने पर भी किसी प्रकार के मान न रखने को कहते हैं।

(२१) अज्ञान परीषह जय—बहुत दिनों तक तपश्चरण करने पर भी अवधिज्ञान आदि न होने से अपने आप खेद न करने को और ऐसी दशा में दूसरों से "अज्ञानी" "मूढ" आदि मर्म-भेदी वचन सुनकर दुखित न होने को कहते हैं।

(२२) अदर्शन परीषह जय—बहुत दिनों तक अधिक तपश्चरण करने पर भी किसी प्रकार के फल की प्राप्ति न होने से सम्यग्दर्शन को दूषित न करने को कहते हैं।

(ड) चारित्र—आत्म स्वरूप में स्थित होना चारित्र है इसके पाँच भेद हैं:—सामायिक चारित्र, छेदोपस्थापना चारित्र, परिहारविशुद्धि चारित्र, सूक्ष्मसांपराय चारित्र, यथाख्यात चारित्र।

(६) निर्जरा तत्व—आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों का थोड़ा २ करके आत्मा से जुदा होना निर्जरा है। जैसे नाव में छिद्र के द्वारा आकर जो पानी भर गया था, उसको थोड़ा २ करके बाहर निकाल दिया जावे। वैसे ही आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों को धीरे २ तपश्चरण द्वारा आत्मा से जुदा कर दिया जाता है। आत्मा के जिस परिणाम से पुद्गल कर्म फल देकर नष्ट हो जाते हैं, वह भाव निर्जरा है। समय पाकर या तपश्चरण द्वारा कर्मरूप पुद्गलों का आत्मा से उड़ना द्रव्य निर्जरा है।

फल देकर अपने समय पर कर्म का आत्मा से जुदा होना सविपाक निर्जरा है।

तप करके समय से पहले ही किसी कर्म को आत्मा से जुदा कर देना अविपाक निर्जरा है।

(७) मोक्ष तत्व—सर्व कर्मों का नष्ट होकर आत्मा के शुद्ध होने का नाम मोक्ष है।

जैसे नाव अन्दर भरा हुआ सब पानी बिल्कुल निकाल कर नाव को साफ कर दिया जाता है, वैसे ही सब कर्मों से सर्वथा रहित होने पर आत्मा शुद्ध परमात्मा स्वरूप

होता है। आत्मा का शुद्ध परिणाम जो सर्व पुद्गल कर्मों के नाश का कारण होता है वह भाव मोक्ष है। आत्मा से सर्वथा द्रव्य कर्मों का जो दूर होना है वह द्रव्य मोक्ष है।

पदार्थ

इन्हीं ऊपर बताये हुए सात तत्वों में पुण्य और पाप मिलाने से ही नौ पदार्थ कहलाते हैं।

पुण्य—उसे कहते हैं जिसके उदय से जीवों को सुख देने वाली सामग्री मिले। जैसे किसी को व्यापार में खूब लाभ होना, घर में सुपुत्र का होना, उच्चपद का प्राप्त होना ये सब पुण्य के उदय से होते हैं।

परोपकार करना, दान देना, भगवान् का पूजन करना, ज्ञान का प्रचार करना, धर्म का पालन करना आदि शुभ कार्यों से पुण्य का बंध होता है।

पाप—जिसके उदय से जीवों को दुख देने वाली चीजें मिलें। जैसे रोगी हो जाना, पुत्र का मर जाना, धन चोरी हो जाना इत्यादि यह सब पाप के उदय से होते हैं। हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, जुआ

दूसरों की निन्दा करना, दूसरों का बुरा चाहना आदि बुरे कार्यों से पाप का बंध होता है।

प्रश्नावली

१ तत्व किसे कहते हैं ? और कितने होते हैं ? नाम बताओ।

२ (अ) प्राण कितने प्रकार के होते हैं ? बताओ मुक्त जीवों के कौन से प्राण होते हैं और संसारी जीवों के कौन २ से प्राण होते हैं ?

(आ) नीचे लिखों में कितने और कौन से प्राण पाये जाते हैं ? स्त्री, देव, नारकी, कुर्सी, इञ्जन, चिड़िया, वृक्ष, चिंवटी, मक्खी, लड़का, लट ?

३ बताओ सातों तत्वों में कौन कौन से तत्व ग्रहण करने के योग्य और कौन से तत्व दूर करने के योग्य हैं ? मोक्ष, संवर निर्जरा, आस्रव इन तत्वों को क्रम वार लिखो। और इनका स्वरूप दृष्टान्त सहित समझाओ ?

४ संक्षिप्ततया बताओ की तीसरे तत्व के कितने व कौन से मुख्य कारण हैं ? मिथ्यात्व और अविरति में लक्षण लिख कर १५ योगों के नाम लिखो।

५ बंध किसे कहते हैं ? और यह कितने प्रकार का है ? बंध और आस्रव में क्या भेद है ?

६ संवर तत्व के मुख्य कारणों को लिखो। अनुप्रेक्षा या भावना मे क्या भेद है ? निम्नलिखित के लक्षण लिखो अन्यत्व भावना, निर्जरा भावना, संसार भावना, लोक भावना, धर्म भावना।

७ चरित्र किसे कहते हैं ? ये कितने होते हैं ? नाम लिखो।

८ पदार्थ कितने व कौन २ से होते हैं ? कौन २ से कार्य करने से पुण्य और किनसे पाप का बंध होता है ?

९ (क) परीषह किसे कहते हैं ? परीषह कितनी हैं और उन को कौन सहन करते हैं और क्यों ?

(ख) नीचे लिखी परीषहों का स्वरूप बताओ — आक्रोशपरीषह, याचनापरीषह, अलाभपरीषह, सत्कार तिरस्कार परीषह, चर्या परीषह, ।

१० (क) नीचे लिखे साधुओं ने कौनसी परीषह सही ऋषभ देव स्वामी को आहार के लिये जाने पर भी आहार ना मिला, छह महीने तक बराबर अंतराय रहा ।

(ख) आनन्द स्वामी जब बन में ध्यानारूढ़ खड़े थे तो सिंह ने उनके शरीर को बिगाड़ा ।

(ग) राजा श्रेणिक ने यशोधर स्वामी के गले में मरा हुआ सॉंप डाल दिया उससे चिउंटियां उनके शरीर पर चढ़ गई और बहुत बड़ा कष्ट दिया ।

(घ) श्री मानतुंगाचार्य को राजा भोज ने जेल में डलवा दिया ।

(ङ) सनत्कुमार मुनि को कुष्ठ हो गया बड़ी पीड़ा हुई—वैद्य मिलने पर भी उन्होंने इलाज की इच्छा प्रगट नहीं की।

(च) सूर्यमित्र मुनि वायुभूति को संबोधन के लिये उसके घर गये । वायुभूति ने उनको बहुत कुछ बुरा भला कहा — उन्होंने सब शांति से सहन कर लिया ।

(छ) एक मुनि कड़ी धूप में खड़े हैं, कई दिन से आहार नहीं लिया है, प्यास के मारे गला सूख रहा है, शरीर

पर पसीने के कारण रेत जम गया है आँख में तुनके गिर पड़ा है-ये कष्ट बिना खेद सहन कर रहे हैं?

एक समय में अधिक से अधिक कितनी परीषह हो सकते हैं?

१ नीचे लिखे कामों से पुण्य होगा या पाप -छात्रों को छात्र वृत्ति देने से, लंगड़े, लूले, अपाहज आदमियों को रोटी खिलाने से, जुआरी तथा शराबी को रुपया पैसा दान देने से, मैंढा, तीतर लड़ाने से, प्याऊ और सदाव्रत लगाने से, छोटी उम्र तथा बुढ़ापे में शादी करने कराने से, विवाह शादियों में व्यर्थ व्यय करने से, औषधालय तथा कन्या पाठशाला, खुलवाने से, टूटे फूटे मंदिरों का जीर्णोद्धार करने से, चोरी करने से, शिकार खेलने से, बदचलनी करने से, सिगरेट बीड़ी पीने से, लड़के लड़कियों को बेचने से, या काम करने से।

पाठ २३

विद्यार्थी का कर्त्तव्य

प्यारे बालको! इस पाठ में हम तुम्हें यह बतलाना चाहते हैं कि एक विद्यार्थी का क्या कर्त्तव्य है। उन कर्त्तव्यों की ओर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहते हैं। जिनका पालन करके तुम अपना जीवन सुधार सकते हो।

स्वास्थ्य

सदा नीरोग रहने का यत्न करो। अपने स्वास्थ्य रक्षा की ओर अधिक ध्यान दो। यदि किसी का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, तो वह किसी काम का नहीं रहता है। स्वस्थ पुरुष का चित्त प्रसन्न रहता है, उसके शरीर में चुस्ती रहती है। स्वस्थ पुरुष का मन अपने आप काम करने को चाहता है। स्वास्थ्य का ब्रह्मचर्य व्यायाम खान पान की शुद्धि से गहरा सम्बन्ध है।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य एक प्रकार का तप है। विद्यार्थियों के लिये ब्रह्मचारी रह कर विद्या पढ़ना आवश्यक है। विद्यार्थी होते हुए अपने मन को कभी किसी विषय वासना की ओर न जाने दो। सत्य, सन्तोष, क्षमा, दया, प्रेम आदि गुण ब्रह्मचारियों के लिये बड़े ही सुलभ हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य के लिए धन की, न समय की और न खास स्थान की ही आवश्यकता है। आवश्यकता है तो एक दृढ़ प्रतिज्ञा का। इसलिये अब तक विद्यार्थी हो ब्रह्मचर्य का नियम लो। उत्तम रीति से उसका पालन करो। फिर तुम कुछ दिनों में इसके मीठे फल को भी चखोगे।

मन में दृढ़ता रख कर बुरे विचार न आने दो, वीर्य का दुरुपयोग न करो, बुरी संगत से बचो। तुम्हारा आत्म बल बढ़ेगा। तुम देशोन्नति करने को समर्थ होगे। विद्वानों में तुम्हारा आदर होगा। तुम्हारे पास धन की कमी नहीं रहेगी। अपने धर्म को भली भाँति, पालन कर सकोगे।

व्यायाम

विद्यार्थियों को बड़ा मानसिक परिश्रम करना पड़ता है। वे यदि कोई व्यायाम न करें तो रात दिन बैठे बैठे उनके हाथ पाँव शिथिल हो जावेंगे। उनका शरीर अस्वस्थ हो जायेगा। व्यायाम करने से शरीर हृष्ट पुष्ट और बलवान होता है। व्यायाम करने से पाचन शक्ति बढ़ती है, भूख अधिक लगती है। व्यायाम से शरीर में पसीना आता है और पसीने के साथ शरीर का मैल बाहर निकल जाता है। व्यायाम करने से मन तथा शरीर में एक प्रकार की फुर्ती और ताजगी आ जाती है, शरीर नीरोग रहता है। अपने शरीर के अनुसार जो व्यायाम, योग्य जान पड़े उसी का अभ्यास करना उचित है। भागना दौड़ना कबड्डी खेलना, क्रिकेट, हाकी, फुटबौल आदि खेलों का खेलना लाभदायक है। सवेरे शाम खुले मैदान में सैर करना भी

उपयोगी। इस लिये नियत समय पर किसी न किसी प्रकार का व्यायाम करना विद्यार्थियों का कर्तव्य है।

खान पान तथा रहन सहन

अपने खान पान की शुद्धि की ओर अधिक ध्यान दो। इससे शरीर स्वस्थ रहता है। सड़े गले या अपवाके पदार्थ कभी न खाओ। भूख से अधिक मत खाओ। देर से पचने वाला भोजन मत करो। रात्रि में मत खाओ। सदा नियत समय पर भोजन करो। शुद्ध छना हुआ जल पीओ। मदिरा, तम्बाकू बीड़ी आदि मादक पदार्थों का, सेवन मत करो।

उदारता

अपने मन को शान्त और प्रसन्न रक्खो। बुरे भावों को अपने मन में न आने दो। छल कपट से सदा दूर रहो। सरल परिणामी बनो। यदि कोई मनुष्य तुम्हारे साथ कोई उपकार करे तो उसे न भूल जाओ। सदा उदार चित्त बनो। सब के साथ अच्छा व्यवहार करो। किसी से द्वेष न करो। संकुचित दृष्टि को छोड़ो। सहन शीलता सीखो। इस गुण के बिना मनुष्य उदारचित्त नहीं हो सकता। यदि किसी दूसरे का तुम से अपराध हो जावे तो उससे अपने अपराध को क्षमा कराओ। अपनी

दवात, कलम आदि चीजों को सदा नियत स्थान पर रक्खो। ऐसा करने से जरूरत पड़ने पर तुम्हारी चीजें तुरन्त ही मिल जायेंगी, उसके ढूँढने में व्यर्थ ही समय न जाएगा।

विनय

सदा अपने माता पिता की आज्ञा-पालन करो। ऐसा करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है। सदा ही प्रयत्न करो कि वे तुमसे प्रसन्न रहें। उन्होंने तुम्हारा पालन किया है तुम्हारे लिये बड़े कष्ट उठाये, जितना उनका आदर करो थोड़ा है। माता पिता के दूसरे स्थान पर विद्या-गुरु हैं। वह ज्ञान देते हैं। भले बुरे को पहचानना सिखाते हैं गुरु की आज्ञा मानना और उनका आदर करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। पाठशाला जाकर पहले गुरु जी को प्रणाम करो। फिर आदर से अपने स्थान पर बैठो। जो कुछ पूछो, विनय से पूछो और जो कुछ वह कहें ध्यान से सुनो, और उसे याद रक्खो। जो विद्यार्थी तुम्हारे से ऊँची कक्षा में हैं, उनकी विनय करो। जो नीची कक्षा में हैं उनसे प्रेम करो। अपने सहचारियों का भी यथायोग्य आदर करो। आपस में झगड़ा न करो, सबके साथ मेल रक्खो। खोटे लड़कों की संगत से बचो। तुम्हारे साथियों

में जो निर्बल हों उनकी सहायता करो। [illegible] रक्खो। सब बड़ों को योग्यतानुसार [illegible]।

मित्रता

अपने मित्रों से प्रेम रक्खो, [illegible] का साथी होता है। किसी को मित्र [illegible] खूब परख करलेना चाहिये, नहीं [illegible] पड़ता है। यदि मित्र कपटी हो [illegible] अनेक दुख मिलते हैं।

समय

बालको! सदा समय [illegible] बहुमूल्य पदार्थ है। बहुत से लड़के [illegible] समय को आलस्य में खो देते हैं। बहुत से [illegible] में नष्ट कर डालते हैं। यह ठीक नहीं है। [illegible] समय पर अपनी पढ़ाई लिखाई वगैरह का [illegible] हैं, उनको पीछे पछताना पड़ता है, परीक्षा [illegible] हो जाते हैं। इसलिये हर काम समय पर [illegible] समय-विभाग बनालो। जिस काम के लिये [illegible] उसे उस समय में ही कर डालो। धर्म के [illegible] धर्म का [illegible] करो। पढ़ने के समय खूब [illegible]। खेलने के समय [illegible] उत्साह के साथ खेलो। [illegible] पाठशाला

इत्यादि। आज का काम कल पर मत छोड़ो। ऐसा-समय-विभाग बनाओ कि पहले जरूरी २ काम को करो। एक समय में एक ही कार्य करो। जिस काम को हाथ में लो उसे पूरा करके छोड़ो, अधूरा न रहने दो। रात्रि को सोते समय विचार लो कोई काम रह तो नहीं गया।

परिश्रम

जो काम तुम्हें करना हो परिश्रम के साथ करो। जो कुछ पढ़ो मन लगाकर पढ़ो। किसी बात को एक बार न समझ सको तो उसे दूसरी बार समझने का यत्न करो। पढ़ने में खूब परिश्रम करो। परिश्रम करने से मोटी बुद्धि वाले भी बड़े विद्वान् हो जाया करते हैं। यदि तुम्हें कोई कार्य कठिन मालूम हो तो उसे घबड़ा कर न छोड़ दो। साहस छोड़ कर न बैठ जाओ। परिश्रम करके उस कार्य को पूरा करके छोड़ो जो भी कार्य करो उसे उत्साह से करो। परिश्रमी और साहसी बालकों का हर समय मान होता है। जो अपने पैरों पर खड़ा रह कर शौर्यता के साथ साहस पूर्वक कार्य करता है उसी की जय होती है और वही वीर कहलाता है।

आत्म गौरव

सदा अपने देश, जाति, कुल तथा धर्म की मर्यादा

का पालन करते रहो। इनका प्रतिष्ठा रखना ही आत्म गौरव है। आत्म गौरव रखने के लिये विद्या, क्षमा, परोपकार, विनय आदि गुणों की बड़ी आवश्यकता है। कभी भी कोई कार्य ऐसा न करो कि जिससे तुम्हारे धर्म पर दोष लगे तुम्हारे देश, तुम्हारी जाति, तुम्हारे कुल तथा तुम्हारी पाठशाला की प्रतिष्ठा भंग हो। जहां तक तुम से बन सके उनकी सेवा करो कि जिस से उनकी प्रतिष्ठा संसार में सदा उज्ज्वल बनी रहे।

"जिनको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है॥"

भावनायें

सदा अपने दिल में यह भावना करो, कि मेरी आत्मा में किसी समय भी खोटे भाव न हों। मेरे यह भाव रहें कि जगत् के सब जीवों का भला हो, सब ही जीव मेरे समान हैं। गुणवानों को देखकर मेरे हृदय में ऐसी खुशी हो कि जैसे किसी रङ्क को चिन्तामणिरत्न के मिलने से प्राप्त होती है। मेरा यह अभिलाषा है कि दीन दुखी जीवों पर मेरे हृदय में दया उत्पन्न हो। उनको देखकर मेरा, चित्त काँप उठे और मेरा यह दृढ़ विचार

हो जावे कि जिस तरह भी बने उनके दुःख दूर करने का प्रयत्न करूँ।

मेरी यह भावना है जो पाखंडी तथा अधर्मी हैं, दुष्ट हैं, जो भलाई के बदले बुराई करते हैं, अथवा जो मेरा आदर तथा सत्कार नहीं करते हैं, मैं उनसे न राग करूँ न द्वेष। प्यारे बालको ! इस सब कथन का सारांश यह है कि सदा अपने मन और शरीर को पवित्र रक्खो। विषय वासनाओं का त्याग करो। स्वार्थ बुद्धि को हटाओ। तुम में जो दोष हैं, उन्हें दूर करने का संकल्प करो, तथा गुणों को बढ़ाने मे प्रयत्नशील बनो। ऐसा करने से अवश्य ही तुम्हारा जीवन सुंदर, उदार, सुखी और शांत बन जावेगा

प्रश्नावली

१ विद्यार्थी किसे कहते हैं ? विद्यार्थी के कौन २ से कर्त्तव्य हैं ?
२ स्वास्थ्य किसे कहते हैं और इसको प्राप्त करने के लिये कौन २ सी बातों पर तुम ध्यान दोगे ?
३ व्यायाम किसे कहते हैं ? और व्यायाम करने से क्या लाभ हैं ? बताओ ऐसे कौन से व्यायाम हैं जो लड़कियों के लिये उचित समझे जा सकते हैं ?
४ विनय किसे कहते हैं ? तुम अपने माता पिता गुरु और सहपाठियों तथा अपने से नीची कक्षाओं के छात्रों के प्रति इस गुण का किस प्रकार पालन करोगे ?
५ मित्रता करने से प्रथम क्या ख्याल रखना चाहिये ? समय

का आदर क्यों करना चाहिए और अपना समय किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए ?

६ संसार में ऐसी कौन सी शक्ति है जिससे मनुष्य प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है ? 'आत्म गौरव' का क्या अभिप्राय है ? तुम्हें अपने दिल में कौन सी भावनायें लानी चाहिये ?

पाठ २४

श्रावक की ग्यारह प्रतिमा

श्रावकों के आचरण के लिये ११ दर्जे होते हैं, उन्हें ग्यारह प्रतिमा कहते हैं। श्रावक ऊँचे २ चढ़ता हुआ पहले से दूसरी में, दूसरी से तीसरी में और इसी तरह ग्यारहवीं प्रतिमा तक चढ़ता है, और उसके बाद साधु या मुनि हो जाता है। अगली २ प्रतिमाओं में पहले की प्रतिमाओं की क्रिया का पालन भी जरूरी है।

[१] दर्शन प्रतिमा—निर्मल सम्यग्दर्शन सहित निरतिचार आठ मूलगुणों का पालन करना और सातों व्यसनों का अतिचार सहित त्याग करना दर्शन प्रतिमा है।

इस प्रतिमा का धारी दार्शनिक श्रावक कहलाता है वह जिनेन्द्र देव, निर्ग्रंथ गुरु और दयामय धर्म के सिवाय और किसी की मान्यता कभी नहीं

जिन धर्म में उसका दृढ़ विश्वास होता है। उसको किसी प्रकार की शंका तथा भय नहीं होता। वह धर्म का साधन करके विषयसुखों की इच्छा नहीं करता वह धर्मात्माओं तथा किसी भी दीन दुखी मनुष्य तथा पशुओं को रोगी और मलीन देखकर उनसे ग्लानि नहीं करता। मूढ़ता से देखा देखी कोई अधर्मी क्रिया नहीं करता। यदि किसी समय कोई धर्म से डिगता हो तो वह उसे सहायता देकर धर्म में दृढ़ करता है और यथा शक्ति उनका उपकार करता है तथा सच्चे ज्ञान का प्रकाश कर धर्म की प्रभावना करता है।

भूल कर भी अपनी जाति, कुल, धन, बल, रूप अधिकार विद्या और तप का गर्व नहीं करता। निरभिमानी और मन्द कषायी रहता है। वह कुगुरु कुदेव को वन्दना नहीं करता तथा पीपल पूजना, कलम, दावात तथा रुपये पैसे का पूजना आदि लोक मूढ़ता नहीं करता। कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र व इनके भक्त जनों की प्रशंसा तथा संगति इस प्रकार नहीं करता, जिससे उसके सम्यग्दर्शन में दोष लगे। इस प्रकार सब प्राणियों से प्रेम रखते हुए वह अपने श्रद्धान को रक्षा करता है।

[२] व्रत प्रतिमा—५ अणुव्रत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण।
३ गुणव्रत दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थ दण्डव्रत।
४ शिक्षाव्रत सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण अतिथि संविभाग। इन १२ व्रतों का पालन करना व्रत प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी व्रती श्रावक कहलाता है। यह अपने व्रतों में कोई अतीचार नहीं लगाता।

(३) सामायिक प्रतिमा—प्रतिदिन सवेरे, दोपहर, शाम को छ घड़ी या कम से कम दो घड़ी तक निरतिचार सामायिक करना सामायिक प्रतिमा है।

(४) प्रोषध प्रतिमा—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को १६ पहर का अतिचार रहित उपवास करना और आरम्भ परिग्रह को त्याग करके एकांत में बैठकर धर्म ध्यान करना प्रोषध प्रतिमा है। १६ पहर का प्रोषध उत्तम होता है। १२ पहर का मध्यम और ८ पहर का जघन्य प्रोषध कहलाता है।

(५) सचित्त त्याग प्रतिमा—हरी वनस्पति अर्थात् कच्चे फल, फूल बीज, पत्ते वगैरह के त्याग को सचित्त त्याग प्रतिमा है। जिसमें जीव होते हैं, उन्हें सचित्त

इसलिये ऐसे पदार्थों का जिनमें जीव न हो खाना सचित्त त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी कच्चे जल का भी त्याग करता है, परन्तु वह स्वयं सचित्त पदार्थ को अचित्त बनाकर ग्रहण करता है।

(६) रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा–मन वचन काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से रात्रि में इस प्रकार के आहार के सर्वथा त्याग करना रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी सूरज छिपने के दो घड़ी पहले से सूरज निकलने के दो घड़ी पीछे तक आहार पानी का सर्वथा त्याग करता है।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा–मन, वचन, काय से स्त्री मात्र का त्याग करना तथा निरतिचार ब्रह्मचर्य पालन करना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

(८) आरम्भ त्याग प्रतिमा–मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से गृहकार्य सबंधी सर्व प्रकार की क्रियाओं का त्याग करना आरम्भ प्रतिमा है इस प्रतिमाका धारी पूजनार्थ स्नान पूजा व दान कर सकता है

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमा–धन धान्यादि दश प्रकार के बाह्य परिग्रह को त्याग कर सतोष धारण करना परिग्रह त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी अपने लिये

कुछ आवश्यक वस्त्र रख लेता है। रुपया पैसा पास नहीं रखता। घर का त्याग कर धर्मशाला में रहता है।

[१०] अनुमति त्याग प्रतिमा-गृहस्थाश्रम के किसी भी ससारिक कार्य की अनुमोदना नहीं करना अर्थात् सलाह नहीं देना अनुमति त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी भोजन के समय जो कोई भी उसे भोजन के लिये बुलाये उसके यहाँ शुद्ध भोजन कर आता है, परन्तु यह नहीं कहता कि "मेरे लिये अमुक भोजन बनादो।"

[११] उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा वन में या मठ में तपश्चरण करते हुए रहना, खड वस्त्र धारण करना और भिक्षा वृत्ति से योग्य आहार लेना उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी अपने निमित्त बनाये हुये भोजन को ग्रहण नहीं करता है। इस प्रतिमा के दो भेद हैं:—

क्षुल्लक और ऐलक

[१] क्षुल्लक-उचित समय पर अपनी दाढ़ी आदि के केश उस्तरे व कैंची से कतरवाते हैं, लगोटी और उसके साथ एक ओढ़ने चादर तथा कमडलु और पीछी रखते हैं। ये गृहस्थी के यहाँ बैठकर किसी पात्र में भोजन करते हैं।

[२] ऐलक-यह केशों का लोंच करते हैं, और केवल लगोटी धारण करते हैं तथा कमडलु पीछी

गृहस्थी के यहाँ बैठकर अपने हाथ में ही भोजन करते हैं।

प्रश्नावली

१ प्रतिमा किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं? नाम बताओ। पहली प्रतिमा के धारी के लिये क्या २ करना, और क्या २ न करना जरूरी है?

२ जब दूसरी प्रतिमा में सामायिक व्रत और प्रोषधोपवास व्रत धारण कर लिये जाते हैं तो फिर सामायिक प्रतिमा और प्रोषध प्रतिमा जुदा २ क्यों रक्खीं?

३ प्रतिमा का पालन कौन करते हैं? एक मनुष्य सचित्त त्याग प्रतिमा का धारी है तो बताओ वह और कौन २ सी प्रतिमाओं का पालन करता है?

४ सचित्त किसे कहते हैं? पाँचवीं प्रतिमा का स्वरूप क्या है? इस प्रतिमा का धारी कच्चा जल पीता है या नहीं? उत्तर कारण सहित लिखो।

५ छठी प्रतिमा में रात्रि भोजन का निषेध किया गया है, इससे पहली ५ प्रतिमाओं का धारी रात्रि को भोजन कर सकता है या नहीं? यदि नहीं तो फिर इस प्रतिमा में क्या विशेषता है?

६ बताओ ब्रह्मचारी कौन से प्रतिमा के धारी हैं? और उनके क्या २ नियम हैं?

७ आठवीं प्रतिमा का धारी क्या २ काम कर सकता है और क्या नहीं?

८ नवीं प्रतिमा के धारी का क्या कर्त्तव्य है? इस प्रतिमा का धारी घर में रह सकता है या नहीं? और क्यों?

९ दसवीं प्रतिमा का धारी धार्मिक कार्यों में अपनी अनुमति देगा या नहीं?

१० (क) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा किसे कहते हैं ? इस प्रतिमा के धारी के लिये भोजन का क्या नियम है ?
(ख) इस प्रतिमा के कितने भेद हैं ? और उनमें क्या अंतर है ?

पाठ २५

नीति के दोहे (पं० द्यानतराय जी)

नर की शोभा रूप है, रूप शोभ गुणवान।
गुण की शोभा ज्ञान है, ज्ञान छिमातैं जान ॥ १ ॥
चेतन तुम तो चतुर हो, कहा भये मति हीन।
ऐसा नरभव पाय के, विषयन में चित दीन ॥ २ ॥
निशि का दीपक चन्द्रमा, दिन का दीपक भान।
कुल का दीपक पुत्र है, तिहुँ जग दीपक ज्ञान ॥ ३ ॥
घर की शोभा धन महा, धन की शोभा दान।
सोभै दान विवेक सों, छिमा विवेक प्रमान ॥ ४ ॥
कला बहत्तर पुरुष की, तामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका, दूजे जीव [illegible] ॥ ५ ॥
क्रोध समान न शत्रु है, छमा समान न [illegible]
निन्दा समान न गिलान है, प्रभु के सम [illegible] ॥ ६ ॥
रूखा भोजन करज सिर और [illegible]
चौथे मैले कापडे, नरक [illegible] ॥ ७ ॥
उद्यम बिन अरु माँगना, बेटी [illegible]
सब दुख जिन के मिट गये, [illegible]
दाना दुश्मन ह भला, जो [illegible]
[illegible]डे भाग्य तें पाइये, [illegible]

धन जोरे तें ऊँच नहिं, ऊँच दान तें होत
सागर नीचे ही रहे, ऊपर मेघ उदोत ॥ १० ॥

प्रश्नावली

१ नीति के दोहों से क्या अभिप्राय है? और इन दोहों के बनाने वाले कौन हैं?
२ तीनों लोकों में प्रकाश करने वाली कौन सी वस्तु है?
मनुष्य के लिये कितनी कलायें होती हैं और उनमें मुख्य कौन सी होती हैं?
३ इस संसार में सब से अधिक शत्रु और मित्र कौन हैं?
४ संसार में मनुष्य किस प्रकार ऊँचा बन सकता है?
५ नीति के दोहों से अपनी पसंद के ४ दोहे मुखाग्र सुनाओ।

पाठ २६

वीर विमलशाह

वीर विमलशाह पाटन के वीर मन्त्री के पुत्र थे। पिता के दीक्षा लेने पर विमलशाह की माता वीरमती अपने पुत्रों को लेकर पिता के घर चली गई। उनके भाई की स्थिति ठीक नहीं थी। विमल अपने मामा के साथ खेती करता था। वह बहुत पराक्रमी था। उसने बाण विद्या में अच्छी निपुणता प्राप्त करली थी। उनका नैपुण्य और पराक्रम देखकर श्रीदत्त सेठ ने अपनी पुत्री के साथ विवाह कर दिया। विवाह के पश्चात् वीरमती और विमलशाह पुनः पाटन में रहने लगे।

एक बार पाटन में राजा की ओर से वीरोत्सव हो रहा था। विमल ने वहाँ बाण विद्या के अनेक अद्भुत पराक्रम दिखलाये, तब भीमदेव राजा ने प्रसन्न होकर विमलशाह को दण्डनायक बनाया।

विमलशाह एक सफल सेनापति हुआ। उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करके कीर्ति बढ़ाई थी। यह देख कर राज्याधिकारी बड़े कुढ़ने लगे और उसे मारने के अनेक प्रयत्न किये। विमलशाह के विरुद्ध राजा के भी कान भर दिये गये। एक बार एक सिंह छोड़ कर विमलशाह से पकड़ने को कहा गया। विमलशाह ने बड़ी ही वीरता से सिंह को पकड़ कर पींजरे में बन्द कर दिया।

एक बार मल्लयुद्ध मे भी विमलशाह विजयी हुए तब मत्री तथा अधिकारियों ने कहा कि विमलशाह के बाप दादों ने राज का ऋण लिया था वह अभी तक अदा नहीं हुआ है। विमलशाह यह असत्य आरोप सुन कर राज्य सभा में से चले गये और चुनौती दी कि राज्य से जो हो सके कर लेवे।

एक बार चन्द्रावती के उद्धत राजा धधुक पर भीमदेव को विजय प्राप्त करने की सूझी परन्तु इसके लिये विमल शाह के सिवाय अन्य कोई वीर दिखाई नहीं दिया, तब राजा भीमदेव ने पुन विमलशाह को मान पूर्वक बुलाया और युद्ध करने को कहा

वीर विमलशाह ने देशभक्ति से प्रेरित होकर यह
र्य अपने हाथ में लिया और धंधुक पर चढ़ाई करदी ।
धुक अपने प्राण बचा कर भागा । विमलशाह ने
मदेव की जय घोषणा की और स्वामिभक्ति का
दर्शन करते हुए सोलंकी राज्य का झंडा फहरा दिया ।
सके पश्चात् विमलशाह चन्द्रावति में ही रहने लगे, और
गर की बहुत सुन्दर रचना की ।

इसके पश्चात् इसी रणवीर ने आबू पर्वत पर अठारह
रोड़ तीस लाख रुपया खर्च करके जैन मंदिर
नवाये जो आज विमलशाह की विमल कीर्ति का
मरण दिला रहे हैं और जैन समाज का गौरव और
श संसार भर में उज्ज्वल कर रहे हैं ।

इस प्रकार विमलशाह वीर होने के साथ ही एक
महान् धर्मात्मा भी थे । वे सिंह जैसे पराक्रमी और बलवान
थे, परन्तु उनमें सिंह जैसी क्रूरता नहीं थी ।

प्यारे बालको ! तुम भी वीर विमलशाह की भांति
अपने पूर्ण बल पौरुष को बढ़ाओ और अद्भुत
लौकिक तथा पारमार्थिक कामों को करने के लिये अपने
को वीर साहसी बनाओ ।

प्रश्नावली

१ वीर विमलशाह कौन थे ?
२ उनकी वीरता और पराक्रम के कारनामे सुनाओ ।
३ विमल शाह की कीर्ति के स्मारक आज क्या हैं ?

शिक्षाएँ

कभी अभक्ष्य भक्षण न करो।

सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, सच्चे गुरु के उपासक बनो।

कभी अपने मन में खोटी भावनायें न आने दो।

विषय वासनाओं का त्याग करो।

स्वार्थ बुद्धि को तजो।

अपने जीवन को सुन्दर उदार सुखी व शांत बनाओ।

दूसरों को शान्ति के साथ जीने दो।

लौकिक तथा परमार्थिक कामों को करने के लिये अपने को वीर और साहसी बनाओ।

भले बुरे को पहिचानना सीखो।

परिश्रम सफल जीवन की कुंजी है।

जो काम करो, हर्षपूर्वक करो।

आपदाओं से घबराकर सकर्त्तोंशत मत हो, उनको जीतने का प्रयत्न करो।

वीर के उपासक हो, वीर बनो।

आदर्श सेवक सेवा से देवाधिदेव बन जाता है।

अपने आत्म बल तथा पौरुष को बढ़ाने का भरसक प्रयत्न करो।